इग्नू
जन-जन का
विश्वविद्यालय
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

BHDC 101
हिंदी साहित्य का इतिहास (रीतिकाल तक)

खंड

3

रीतिकालीन काव्य

इकाई 11
रीतिकालीन काव्य के प्रेरणा स्रोत और परिस्थितियाँ 5

इकाई 12
रीतिकालीन काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ - भाग-1 26

इकाई 13
रीतिकालीन काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ - भाग-2 47

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

प्रो. मैनेजर पाण्डेय
बीडी/8ए, डी.डी.ए. फ्लैट, मुनिरका
नई दिल्ली-110067

प्रो. निर्मला जैन
ए–20/17, डी.एल.एफ., सिटी, फेज-1
गुड़गांव-122002, हरियाणा

डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी
बी-5, एफ-2, दिलशाद गार्डन
दिल्ली-110095

प्रो. हरिमोहन शर्मा
184, कादम्बरी अपार्टमेंट, सेक्टर-9,
रोहिणी,, दिल्ली-110085

प्रो. गोबिंद प्रसाद
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

संकाय सदस्य

प्रो. सत्यकाम (निदेशक)
प्रो. शत्रुघ्न कुमार
प्रो. स्मिता चतुर्वेदी (पाठ्यक्रम संयोजक)
प्रो. जितेंद्र कुमार श्रीवास्तव

पाठ्यक्रम संयोजक

प्रो. स्मिता चतुर्वेदी
हिंदी संकाय, मानविकी विद्यापीठ
इग्नू, नई दिल्ली–110068

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

इकाई लेखक	इकाई सं.
डॉ. अर्चना वर्मा	11
प्रो. पूरन चंद टंडन हिंदी विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली	12 और 13

पाठ्यक्रम संयोजक एवं संपादक

प्रो. स्मिता चतुर्वेदी
हिंदी संकाय, मानविकी विद्यापीठ
इग्नू, नई दिल्ली

सहयोग

डॉ. अरुण कुमार पाण्डेय
परामर्शदाता, हिंदी, मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

सचिवालयीय सहयोग

श्री नवल कुमार
मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

आवरण

सुश्री अरविंदर चावला
ए.डी.ए. ग्राफिक्स, नई दिल्ली

सामग्री निर्माण

श्री तिलक राज
सहायक कुलसचिव (प्रकाशन)
सा.नि. एवं वि.प्र., इग्नू, नई दिल्ली

श्री बाबूलाल रेवाड़िया
अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन)
सा.नि. एवं वि.प्र., इग्नू, नई दिल्ली

जनवरी, 2020

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2020

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस कार्य का कोई भी अंश, मिमियोग्राफ या किसी भी अन्य रूप में, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना किसी अन्य व्यक्ति द्वारा पुनरुत्पादित नहीं किया जा सकता है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय से संबंधित सूचना प्राप्त करने के लिए इसके मैदान गढ़ी, नई दिल्ली–110 068 स्थित कार्यालय से संपर्क किया जा सकता है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से कुलसचिव, सामग्री निर्माण एवं वितरण प्रभाग द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

लेजर कम्पोजिंग: राजश्री कम्प्यूटर्स, V-166A, भगवती विहार, उत्तम नगर, (नजदीक सैक्टर 2, द्वारका), नई दिल्ली–59
मैसर्सः राज प्रिंटर्स, ए–9, सैक्टर बी–2, ट्रॉनिका सिटी, लोनी, गाजियाबाद (यू.पी.)

खंड परिचय

प्रस्तुत पाठ्यक्रम के अंतर्गत आप आदिकाल और भक्तिकाल का अध्ययन कर चुके हैं। अब आपके समक्ष यह तीसरा खंड 'रीतिकालीन काव्य' प्रस्तुत है। 'रीतिकाल' हिन्दी साहित्य के 'उत्तर मध्यकाल' को कहा जाता है। इसका समय लगभग दो सौ वर्षों (सं. 1700-1900) का है। इस दौर में अधिकांश रचनाएँ निर्दिष्ट काव्य रीति या प्रणाली के तहत लिखी गई हैं। रीतिकालीन काव्य का मुख्य विषय श्रृंगार है। हम कह सकते हैं कि इस काल की कविता की वस्तु श्रृंगार है और उसका रूप रीति है। रीतिकालीन काव्य मुख्यतः दरबारों में सृजित हुआ है। इस युग के कवि राजाओं या अपने आश्रयदाताओं की स्तुति व मनोरंजन करके अपनी जीविका चलाते थे। इसलिए आश्रयदाताओं की रुचियाँ ही काव्य का विषय बनती थीं। विलास प्रिय आश्रयदाताओं के जीवन में श्रृंगार का स्थान सर्वोच्च था। यह श्रृंगार भक्तिकालीन श्रृंगार से पूरी तरह अलग था। भक्तिकालीन श्रृंगार में धार्मिक पुट था, जबकि रीतिकालीन श्रृंगार विशुद्ध लौकिक था। इस श्रृंगार के प्रेरणा-स्रोत धर्म, अध्यात्म या ईश्वर न होकर कामशास्त्र, अलंकारशास्त्र और रसशास्त्र के अनेक ग्रंथ थे। रीतिकालीन कविता जीवन से नहीं शास्त्र से अधिक परिचालित है। संस्कृत में कवि और आचार्य प्रायः अलग-अलग थे। काव्यांग निरुपण आचार्य ही करते थे। रीतिकालीन कवियों ने कवि कर्म के साथ-साथ आचार्य-कर्म भी निभाया। हालाँकि उन्होंने रस, अलंकार, नायक, नायिका आदि के विवेचन से अधिक इनके दिए गए लक्षणों के उदाहरण रचने में विशेष ध्यान लगाया। वैसे तो रीतिकालीन साहित्य का प्रधान विषय श्रृंगार है पर दरबार और दरबार के दायरे से बाहर इस काल में, सीमित ही सही, श्रृंगारेत्तर रचनाएँ भी लिखी गईं। इनमें भक्ति, ज्ञान, नीति और वीर रस से संबंधित रचनाएँ प्रमुख हैं। रीतिकालीन साहित्य को उसकी संपूर्णता में इस खंड के माध्यम से आपको परिचित कराया जा रहा है।

प्रस्तुत खंड तीन इकाइयों में विभक्त है। प्रथम इकाई (संख्या 11) 'रीतिकालीन काव्य के प्रेरणास्रोत और परिस्थितियाँ' है। इसके अंतर्गत रीतिकाल के अर्थ और स्वरूप को स्पष्ट करते हुए तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक व सांस्कृतिक परिस्थितियों का विवेचन किया गया है। इसके पीछे हमारा उद्देश्य आपको यह बताना रहा है कि युगीन परिस्थितियाँ साहित्य एवं साहित्यकार को किस तरह और किस हद तक प्रभावित करती हैं? रीतिकालीन साहित्य का उसके युग की परिस्थितियों से गहरा रिश्ता था। इस खंड में रीतिकालीन काव्य प्रवृत्तियों को युगीन परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास किया गया है। परिस्थितियों के साथ-साथ रीतिकालीन साहित्य के अन्य प्रेरणा स्रोतों पर विस्तार से विचार किया गया है।

दूसरी इकाई (संख्या 12) 'रीतिकालीन काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ – भाग-1' है। रीतिकाव्य को मुख्यतः तीन भागों – रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त – में बाँटा गया है। इस इकाई में रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध काव्य पर विचार किया गया है। इसके तहत सबसे पहले 'रीति' शब्द के अभिप्राय को स्पष्ट करते हुए 'रीतिबद्ध' और 'रीतिसिद्ध' के अंतर को बताया गया है। इसके साथ ही आपकी जानकारी के लिए प्रमुख रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध कवियों तथा उनकी रचनाओं का विवरण भी दिया गया है। रीतिकालीन कवियों का प्रधान वर्ण्य विषय तो श्रृंगार था; पर उन्होंने श्रृंगारेतर विषयों पर भी काफी कुछ लिखा है। इस इकाई में श्रृंगार के साथ-साथ उनके अन्य वर्ण्य विषयों जैसे कि राजप्रशस्ति,

भक्ति, दर्शन, नीति, प्रकृति आदि का विस्तार से वर्णन किया गया है, ताकि आप रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध काव्य के प्रत्येक पक्ष से परिचित हो सकें। वर्ण्य विषयों की जानकारी देने के बाद अंत में रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध काव्य की विशेषताओं को भी आपके लिए स्पष्ट कर दिया गया है।

तीसरी और अंतिम इकाई (संख्या 13) 'रीतिकालीन काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ भाग-2' है। इसके अंतर्गत रीतिमुक्त काव्यधारा का परिचय देते हुए प्रमुख रीतिमुक्त कवियों के बारे में जानकारी दी गई है। साथ ही रीतिमुक्त काव्य की प्रमुख विशेषताओं को रेखांकित किया गया है। इन विशेषताओं को जानने-समझने के बाद आप रीतिबद्ध या रीतिसिद्ध काव्य से अलग रीतिमुक्त काव्य के वैशिष्ट्य को पहचान सकेंगे। इसके साथ-साथ रीतिमुक्त काव्य में निहित आधुनिक संवेदना को भी लक्षित कर पाएँगे। इकाई के दूसरे भाग में रीतिकालीन काव्य की अन्य प्रवृत्तियों पर काफी विस्तार से विचार किया गया है। रीतिकाल के दो सौ वर्षों का साहित्य सिर्फ श्रृंगारपरक साहित्य नहीं है। इस काल में भक्ति, नीति, वीर एवं प्रशस्ति से संबंधित काव्य भी लिखे गए हैं। इन श्रृंगारेत्तर काव्य प्रवृत्तियों को जानने के बाद आपके सामने रीतिकालीन काव्य का एक संपूर्ण चित्र उभरेगा।

प्रत्येक इकाई में बोध प्रश्न देने के साथ-साथ उनके अपेक्षित उत्तर या संकेत भी दे दिए गए हैं। अतिरिक्त अध्ययन सामग्री की दृष्टि से प्रत्येक इकाई में कुछ उपयोगी पुस्तकों के नाम भी सुझाए गए हैं। इस पूरी सामग्री के अध्ययन से रीतिकालीन साहित्य के संबंध में आपकी व्यापक एवं वस्तुनिष्ठ समझ बनेगी, ऐसा हमारा विश्वास है।

शुभकामनाओं के साथ !

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 11 रीतिकालीन काव्य के प्रेरणास्रोत और परिस्थितियाँ

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 रीति, रीतिकाव्य और रीतिकाल (परिभाषा, नामकरण और सीमा निर्धारण)

11.3 रीतिकालीन परिस्थितियाँ

- 11.3.1 राजनीतिक व्यवस्था
- 11.3.2 आर्थिक व्यवस्था
- 11.3.3 सामाजिक व्यवस्था
- 11.3.4 धार्मिक व्यवस्था
- 11.3.5 सांस्कृतिक स्थिति

11.4 ललित कलाएँ

11.5 रीतिकाल के प्रेरणास्रोत

- 11.5.1 संस्कृत की शास्त्रीय तथा साहित्यिक परंपरा
- 11.5.2 हिंदी का भक्तिसाहित्य
- 11.5.3 भक्ति का रीति में रूपांतर

11.6 अन्य विविध काव्यधाराएँ और उनका सामाजिक आधार

- 11.6.1 उत्कट प्रेमानुभूति
- 11.6.2 भक्ति, ज्ञान, लोकज्ञान और नीतिकाव्य
- 11.6.3 वीररस का काव्य

11.7 सारांश

11.8 उपयोगी पुस्तकें

11.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

11.0 उद्देश्य

रीतिकाल हिंदी साहित्य के स्वर्णयुग (भक्तिकाल) के बाद का वह महत्वपूर्ण काल है जिसमें काव्य की विविध प्रवृत्तियाँ एवं विशेषताएँ एक साथ देखने को मिलती हैं। काल की दृष्टि से हिंदी साहित्य के उत्तर मध्यकाल की इस काव्यधारा के लगभग दो सौ वर्षों में लिखे गए काव्य तथा युगीन कवि एवं आचार्यों के लिए पृष्ठभूमि का काम करने वाली विविध स्थितियों-परिस्थितियों के साथ-साथ रीतिकालीन काव्य के प्रेरणा स्रोतों का विश्लेषण इस इकाई में किया जा रहा है। इस इकाई के अध्ययन से आप :

- रीतिकाल के अर्थ एवं स्वरूप को स्पष्ट कर सकेंगे;
- रीतिकाल की काल-सीमा तथा उसके नामकरण का विवेचन कर सकेंगे;
- रीतिकालीन उपलब्ध सामग्री के मूल स्रोतों की चर्चा करते हुए समस्त सामग्री का वर्गीकरण कर सकेंगे;

- रीतिकाल की राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियों का विवेचन कर सकेंगे;
- रीतिकालीन-साहित्य की पृष्ठभूमि तैयार करने वाली सांस्कृतिक तथा आर्थिक परिस्थितियों को समझा सकेंगे;
- रीतिकाल में साहित्य एवं कला की स्थिति को स्पष्ट करते हुए उसके शास्त्रीय पृष्ठाधार को समझा सकेंगे तथा
- रीतिकालीन काव्य पर परिस्थितियों के प्रभाव की समीक्षा कर सकेंगे।

11.1 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य का उत्तर मध्यकाल ही रीतिकाल के नाम से जाना जाता है। भक्तिकाल के बाद का यह युग अपेक्षाकृत शांत था। मुगल साम्राज्य की जड़ें जमने के बाद एक व्यवस्थित दरबारी संस्कृति का उदय हुआ, जिसमें कविता सुनाने के लिए कवियों को आमंत्रित किया जाता था। मुगल दरबार की देखादेखी अन्य छोटे-मोटे राजाओं ने भी दरबार सजाने और कवियों को उसमें आमंत्रित करने की प्रथा का निर्वाह किया। बाद में, मुगल शासन की शक्तिहीनता, बाहरी आक्रमणों, प्रादेशिक शासकों के पारस्परिक युद्धों, मराठों एवं सिखों के आक्रमणों एवं कंपनी शासन की राज्य-विस्तार की महत्वाकांक्षा के कारण इस युग में अशांति और अव्यवस्था का वातावरण बना, फिर भी दरबार और दरबारी संस्कृति कायम रही। इस पूरी स्थिति का अध्ययन हम आगे विवेचित परिस्थितियों में विस्तार से करेंगे।

यहाँ केवल यह स्पष्ट करना उद्देश्य है कि हिंदी साहित्य का यह कालखंड बहुत से आक्षेपों-आरोपों का युग रहा है। श्रृंगार प्रधान काव्य तथा नायक-नायिका भेद, नख-शिख-वर्णन एवं विविध क्रीड़ाओं का रसमयी शैली में विवेचन इस युग में किया गया। इस युग का अधिकांश काव्य किन परिस्थितियों से चालित एवं प्रेरित होता रहा, इसकी समीक्षा करना भी हमारा लक्ष्य है।

वास्तव में परिस्थितियाँ साहित्य सृजन की प्रभावी प्रेरणा तो बनती ही हैं, साहित्यकार एवं कला-प्रेमियों की दिशा-निर्देशिका का कार्य भी करती हैं। इसी प्रकार परिस्थितियों को बदलने-लाँघने का साहसपूर्ण कार्य भी साहित्यकार ही करता है। कह सकते हैं कि दोनों एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। दुनिया की सभी भाषाओं के साहित्य पर परिस्थितियों के इस प्रकार के प्रभाव को देखा-समझा जा सकता है।

रीतिकालीन साहित्य में भक्ति जैसी प्रमुख प्रवृत्ति का स्थान श्रृंगार ले लेता है और उस श्रृंगारिक वर्णन पर अनेक आरोप-आक्षेप लगाकर उसे अश्लील या घोर श्रृंगारी भी कहा जाता है। परंतु ऐसा क्यों? रीतिकाल का कवि या साहित्यकार घोर श्रृंगारी क्यों हुआ? उसने ऐसी कविता लिखने की प्रेरणा कहाँ से और क्यों पाई? उसके श्रृंगारी काव्य सृजन को प्रोत्साहन किसने दिया? ऐसे कितने ही प्रश्नों के उत्तर तात्कालिक परिस्थितियों और परिवेश में निहित हैं।

रीतिकाल में केवल श्रृंगारी काव्य का ही सृजन नहीं हुआ। श्रृंगार के अतिरिक्त अन्य कई प्रवृत्तियाँ भी इस युग के काव्य में देखने को मिलती हैं जिनका विस्तृत विवेचन आप

इसी खंड की अन्य इकाइयों में देख सकेंगे। यह इस खंड की पहली इकाई है जिसके अंतर्गत आप इस युग के काव्य को प्रभावित प्रेरित करने वाली विविध परिस्थितियों का तथा तात्कालिक परिवेश का विस्तृत अध्ययन करेंगे।

हालाँकि रीतिकाल के नामकरण एवं कालसीमा तथा उसकी उपलब्ध सामग्री के वर्गीकरण का अध्ययन आप प्रथम खंड में भी कर चुके हैं किंतु यहाँ हम रीतिकाल का अर्थ समझते हुए इस युग के काव्य का स्वरूप भी जान लें तो बेहतर होगा। अतः उसी परिप्रेक्ष्य में हम परिस्थितियों का विश्लेषण भी कर सकेंगे। इस जानकारी से आगामी दो इकाइयों की पृष्ठभूमि भी स्पष्ट हो सकेगी। इसी के अंतर्गत हम नामकरण, कालसीमा तथा सामग्री के वर्गीकरण की जानकारी भी हासिल कर सकेंगे। तो आइए, परिस्थितियाँ जानने से पहले रीतिकाल के अर्थ एवं स्वरूप को जान लें।

11.2 रीति, रीतिकाव्य और रीतिकाल (परिभाषा, नामकरण और सीमा निर्धारण)

भारत की साहित्यचिंतन परंपरा में रीति एक पहले से चली आती अवधारणा है। रीति पर केंद्रित एक संप्रदाय भी हुआ जिसने पदसंघटना को रीति कहा और उसे काव्य के लिए अंगसंस्थान के समान माना। यह रीति का पारिभाषिक अर्थ है। संस्कृत के कोशों में रीति शब्द सुष्ठु पदावली, लेखन पद्धति, शैली के अर्थों में मान्य है।

डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में, जिस काव्य में ''वस्तु की अपेक्षा रीति अथवा आकार की, आत्मा के उत्कर्ष की अपेक्षा शरीर के अलंकरण की प्रधानता मिलती है'' वह रीति काव्य है। दूसरे शब्दों में, रीतिकाव्य रचनासंबंधी एक विशिष्ट नियमावली में आबद्ध है। इस काव्य की रचना प्रायः रीतिग्रंथों या लक्षणग्रंथों के रूप में हुई। लेकिन अपवाद भी हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने रीति को एक दृष्टिकोण माना है। लक्षणग्रंथ न रचनेवाला कवि अपने रीतिबद्ध दृष्टिकोण के कारण रीतिकवि ही माना जाएगा।

उत्तर-मध्यकाल (लगभग सन् 1643-1843) के नामकरण को लेकर हिंदी साहित्य के इतिहासकारों में काफी मतभेद रहा है। इतिहास के कालखंड का नामकरण उस युग की केंद्रीय प्रवृत्ति के आधार पर करने का प्रयास किया जाता है। विषयवस्तु की दृष्टि से रीतिकाल में वीर, श्रृंगार और नीति की रचनाएँ हुईं। इनमें भी श्रृंगार ही प्रमुख था। विशेष बात रीतिग्रंथों की रचना थी जिनके द्वारा आचार्यत्व की प्रतिष्ठा हुई। धर्म से समन्वित होने के कारण कथाप्रसंगों में इतनी शक्ति आ गई कि संकेत मात्र से वे ग्रहण किए जा सकते थे।

सबसे पहले मिश्रबंधु ने संवेदना के स्थान पर लेखनपद्धति पर ध्यान केंद्रित करते हुए इसे 'अलंकृत काल' कहा। इस काल की कविता में अलंकरण के प्रति रुझान था अवश्य, किंतु यही एक आधार नामकरण के लिए पर्याप्त नहीं। अलंकरण काव्यभाषा का एक सामान्य गुण रहता आया था। रीतिग्रंथों में अलंकार के अलावा भी अन्य काव्यांगों का विवेचन हुआ है और अन्यथा भी अलंकार अपने आप में रचना का हेतु या प्रयोजन नहीं हुआ करते। इस काल में भी अलंकृति का मूल उद्‌देश्य रस का सृजन ही था अतः इस नाम को विद्वानों ने उपयुक्त नहीं पाया।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसे रीतिकाल कहा था किंतु विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इसे श्रृंगार काल के नाम से परिभाषित करना चाहा। काव्य की प्रमुख संवेदना परिमाण की दृष्टि से निश्चय ही श्रृंगार की थी किंतु युगांतर की निर्णायक प्रवृत्ति के रूप में वीर और नीति कुछ

कम महत्वपूर्ण नहीं। शृंगारकाव्य के रचयिताओं के लिए भी मूल प्रेरणा शृंगार नहीं बल्कि आश्रयदाताओं के रुचि-परितोष की थी जिन्हें प्रसन्न करके वे पुरस्कार पाते थे। ऐसे भी कवि हुए जो इस प्रकार के काव्य को काव्य कहने में सकुचाते थे। गोप, रसरूप, सेवादास आदि कुछ ऐसे कवि भी थे जिन्होंने अपने लक्षणग्रंथों से शृंगार रस का बहिष्कार किया क्योंकि वे यह सिद्ध करना चाहते थे कि उनकी मूल प्रवृत्ति शृंगारिक नहीं है। स्वयं आचार्य शुक्ल को 'शृंगार काल' नाम से कोई आपत्ति नहीं थी परंतु डॉ. नगेन्द्र की मान्यता है कि उल्लिखित कारणों से 'शृंगारकाल' भी युग के समग्र परिचय के लिए कोई उपयुक्त नाम नहीं है।

डॉ. नगेन्द्र ने अपना मत 'रीतिकाल' के पक्ष में देकर इस नामकरण को स्थिर कर दिया। इस नाम को उन्होंने अधिक वैज्ञानिक और तर्कसंगत बताया। इस नाम के पक्ष में कहा जा सकता है कि एक, इसमें रीतिग्रंथ ही अधिकांशतः लिखे गए। दो, शृंगार की कविता भी वस्तुतः शृंगार रस के लक्षण के साथ उदाहरणस्वरूप ही अधिकतर रची गई। तीन, जिन कवियों ने रीतिग्रंथ नहीं रचा वे भी दृष्टिकोण से उसके अनुगामी थे अतः रीतिसिद्ध कहे जा सकते हैं। चार, जो कविता रीति के दायरे के बाहर थी अर्थात रीतिमुक्त, उसके विषय में भी सच यही है कि रीति का पुराना साहित्यशास्त्रीय अर्थ उस पर लागू किया जा सकता है। अर्थात् पदसंघटना की दृष्टि से वह परिष्कृत, प्रांजल रीति रचना ही कही जाएगी। इन सब तर्कों के औचित्य को देखते हुए आज इस कालखंड के लिए रीतिकाल ही सर्वमान्य नाम है।

11.3 रीतिकालीन परिस्थितियाँ

हर समाज की संस्कृति का निर्माण और विकास युग के वातावरण से प्रभावित होता है। भाषा, साहित्य, ललित कलाएँ इत्यादि संस्कृति के अंग हैं। वातावरण के निर्माण में तत्कालीन राजनीति, अर्थव्यवस्था, और सामाजिक गठन की निर्णायक भूमिका होती है। इसलिए किसी युग के साहित्य का अध्ययन करने के लिए ज़रूरी है कि हम उस युग की राजनीतिक, आर्थिक स्थिति, सामाजिक उतार-चढ़ाव तथा अन्य सांस्कृतिक गतिविधियों से परिचित हों। रीति साहित्य का अध्ययन करने के लिए यह जानकारी और भी अधिक ज़रूरी है क्योंकि इस साहित्य के निर्माण की दीर्घ अवधि में देश की राजनीति में परिवर्तन का तूफ़ान उठा। इस तूफ़ान से जीवन का कोई भी पक्ष अछूता नहीं बचा। बदलती राजनीति ने शासक वर्ग के चरित्र को भी बदल दिया। साहित्य और ललित कलाएँ इसी वर्ग की अभिरुचि से नियमित होने के कारण एक विशिष्ट साँचे में ढल गईं।

11.3.1 राजनीतिक व्यवस्था

रीति साहित्य के रचनाकाल में मुग़ल साम्राज्य पतन की ओर जा रहा था। औरंगजेब ने दक्षिणी सल्तनतों को मुग़ल साम्राज्य का अंग बना लिया था। मराठों के साथ भी संघर्ष आरंभ किया लेकिन उनको कुचलने में असफल रहा। परवर्ती मुग़ल शासक मराठों के साथ संघर्ष की चपेट से बच नहीं सके। स्थिति यहाँ तक पहुँची कि शाहआलम द्वितीय, महादजी सिंधिया को अपना वकीले-मुत्तालिक (संरक्षक) मानने के लिए विवश हुआ। औरंगजेब की नीतियों के कारण उत्तर भारत विद्रोहों की आग में झुलसने लगा। जाट, सिख, राजपूत आदि मुग़ल सत्ता को खुली चुनौती देने लगे। पूरी 18वीं शताब्दी तक यही सिलसिला चलता रहा। गद्दी के लिए शाहज़ादों के आपसी

कलह ने विद्रोहों की आग में घी का काम किया। औरंगजेब के समय से ही गृहकलह मुग़ल राजनीति का एक स्थायी अंग बन गई। इस गृहकलह के कारण गुटों में बँटे हुए मनसबदारों की ताकत बहुत बढ़ गई। बादशाह की ताजपोशी में इन गुटों की भूमिका निर्णायक हो गई और उनकी ताकत के सामने बादशाह की हैसियत महज़ एक कठपुतली की रह गई। इस कठपुतली को ताजपोशी करने वाले चलाते थे। मनसबदारों की गुटस्पर्धा के कारण चालीस साल की अवधि में छः बादशाहों ने मुग़ल गद्दी की शोभा बढ़ाई। इनमें अहमदशाह (सन् 1719-48) के अलावा कोई भी पाँच वर्ष से अधिक गद्दी पर नहीं रह सका। बादशाहों की इस उठापटक के दो घातक परिणाम हुए। एक, शासन के संचालन पर बादशाह का ही नहीं, केंद्र का भी कोई नियंत्रण नहीं रह गया। इस वजह से अव्यवस्था और अशांति लगातार बढ़ती गई। केंद्र की चूलें इस हद तक ढीली हो गईं कि मुग़ल साम्राज्य केवल दिल्ली और आगरा के क्षेत्र तक सिमट कर रह गया। सन् 1739 में नादिरशाह के हमले ने इसकी नींव में जो दरार डाली वह कभी नहीं भर सकी। इस हमले से धूलधूसरित हुई मुग़ल मर्यादा ने क्षेत्रीय शक्तियों के हौसले बढ़ा दिए। बची-खुची कसर सन् 1761 में अहमदशाह अब्दाली के हमले ने पूरी कर दी। दो, राज की बागडोर दूसरों के हाथ में चले जाने के बाद बादशाह के पास विलासिता के सागर में गोते लगाने के अलावा और कोई काम नहीं रह गया। सुरा-सुंदरी मुग़ल दरबार की शोभा बढ़ाने लगे। बादशाह ने जो राह पकड़ी उसी पर शासक वर्ग के लोग भी चल पड़े। विलासिता शाही भव्यता का एक मात्र चिह्न बन गई। नतीजा यह हुआ कि बादशाह समेत मुग़ल शासक वर्ग का नाता प्रजा से पूरी तरह से टूट गया। मुग़ल सत्ता एक आधारविहीन कृत्रिम इकाई बन गई।

मुग़ल साम्राज्य के पतन का यह दृश्य थोड़ा विस्तार से जानना जरूरी है क्योंकि आगे की चर्चा के लिए यह आवश्यक पृष्ठभूमि है। इतिहास-लेखन में कुछ समय पहले तक मुगल साम्राज्य के वैभव को समाज के सभी पक्षों के आकलन का पैमाना बना कर रखा गया था। इस विचार से जुड़े इतिहासकार मान लेते हैं कि मुगल वैभव के लुप्त होते ही सर्वत्र केवल पतन के चिह्न दिखाई देने लगे। राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक-सभी दृष्टियों से 18वीं सदी उन्हें केवल 'अंधकारयुग' प्रतीत होती है। लेकिन 18वीं सदी को मुगल साम्राज्य से भिन्न एवं उसके अपने तथ्यों के आलोक में देखने वाले इतिहासकारों के निष्कर्ष कुछ भिन्न हैं।

यह क्षेत्रीय शक्तियों के उत्थान का काल था। ऐसा अचानक नहीं हुआ था। क्षेत्रीय भावनाओं की जड़ें सल्तनत युग में ही जमने लगी थीं। क्षेत्रीयता के उत्कर्ष में क्षेत्रीय भाषाओं के विकास की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। इन भाषाओं को संत आंदोलनों ने प्रतिष्ठित बनाया। स्थानीय राजाओं और जमींदारों को अपनी स्वतंत्र रियासतें खड़ी करने की प्रेरणा देने में क्षेत्रीय भावनाओं का उभार बहुत कारगर सिद्ध हुआ।

मुगल साम्राज्य का विघटन तो हुआ लेकिन उनके द्वारा निर्मित सभी प्रशासकीय परंपराएँ एकाएक लुप्त नहीं हो गईं। अवध, हैदराबाद, मुर्शिदाबाद, रामपुर आदि की रियासतें मुगल प्रशासकीय परंपराओं पर ही टिकी थीं। स्थानीय आवश्यकताओं के आधार पर इनमें कुछ संशोधन किए गए किंतु आमूल परिवर्तन कदापि नहीं। इन नए शासकों ने अपने क्षेत्रों में शांति और व्यवस्था स्थापित करके एक बाढ़ की तरह अराजकता को फैलने से रोका। इन्होंने अपनी प्रजा को वह सुरक्षा दी जिससे मुग़ल शासन की प्रजा वंचित हो चुकी थी।

18वीं सदी में दूसरी महत्वपूर्ण बात यह हुई कि सामंती तत्व प्रबल हो उठे। जमींदारों के सहयोग के बिना शासन चलाना मध्ययुग में किसी भी शासक के लिए संभव नहीं था।

जमींदार ग्रामीण समाज का अगुवा होता था। गाँव पर जिस जाति, कबीले अथवा खाप का कब्जा होता था, अक्सर वहाँ का जमींदार भी उसी जाति, कबीले, अथवा खाप का सदस्य होता था। इसलिए किसानों के साथ उसका घनिष्ठ संबंध हुआ करता था और शासन के विरुद्ध विद्रोह में इसे किसानों का सहयोग आसानी से मिल जाता था। शासक, ताकत के बूते पर ही इन जमींदारों का सहयोग पा सकता था। केंद्र की दुर्बलता का लाभ उठाने में जमींदारों ने कभी कोई चूक नहीं की। केंद्रीय मुगल सत्ता में दुर्बलता के चिहन उभरते ही जमींदार अपने को स्वतंत्र राजा घोषित करने लगे। इनके असहयोग के कारण मुगल सत्ता प्रतिदिन जर्जर होती चली गई क्योंकि लगान का जो धन जमींदारों के माध्यम से सरकारी खजाने तक पहुँचता था, उसका जाना बंद हो गया। मनसबदारों की आय और सैनिक ताकत पर भी जमींदारों के विद्रोह का असर पड़ा। औरंगजेब की मृत्यु के बाद दो दशकों के भीतर ही जागीरदार भी जमींदारों की राह पर चल निकले और जागीरों को अपनी निजी संपत्ति बनाकर नवाबी का सेहरा अपने सिर पर रख लिया। सामंती तत्वों के उभार ने केंद्रीय विघटन के साथ प्रशासकीय विकेंद्रीकरण को भी जन्म दिया।

जहाँ एक ओर क्षेत्रीय ताकतें अपना पैर पसार रही थीं और सामंती ताकतें प्रबल हो रही थीं और नई रियासतें खड़ी हो रही थीं, वहीं दूसरी ओर ईस्ट इंडिया कंपनी सन् 1757 में प्लासी युद्ध के बाद, बंगाल सूबे के संसाधनों को आधार बनाकर औपनिवेशिक साम्राज्य की स्थापना का मार्ग प्रशस्त कर रही थी। इस बढ़ते हुए खतरे से भारत का शासक वर्ग बेखबर था। साम्राज्यों का उदय अस्त इतिहास के लिए कोई अनहोनी बात या आश्चर्यजनक घटना नहीं है। मुगल साम्राज्य का पतन भी अपने आप में कोई दुर्भाग्यपूर्ण घटना नहीं कही जा सकती। लेकिन भारतीय इतिहास के अगले अध्याय के कारण मुगल साम्राज्य का पतन दुर्भाग्यपूर्ण बन गया। इसके स्थान पर जो अगला साम्राज्य आया उसने सारे भारत को दासता की बेड़ियों में जकड़ दिया। मुगल साम्राज्य का स्थान ब्रिटिश साम्राज्य ने लिया और क्षेत्रीय ताकतें उसका मुकाबला नहीं कर सकीं।

11.3.2 आर्थिक व्यवस्था

संस्कृति की दशा और दिशा तय करने में उन दबावों की भूमिका निर्णायक है जिनका स्रोत आर्थिक होता है। इसी वजह से नादिरशाह के आक्रमण के बाद दिल्ली का सांस्कृतिक संसार काफी हद तक उजड़ गया। दिल्ली के शायर लखनऊ, हैदराबाद इत्यादि की ओर रवाना हुए और चित्रकारों, कलावंतों ने हिंदू नरेशों के पास आश्रय खोजा।

विदेशी आक्रमणों और देशी विद्रोहों ने मुगल साम्राज्य को इस तरह जर्जर कर दिया था कि सांस्कृतिक गतिविधियों के संरक्षक और आश्रयदाता की भूमिका निभाना अब उसके लिए संभव नहीं रह गया था। मुगल साम्राज्य की आर्थिक जर्जरता से दिल्ली भले ही वैभवहीन हुई और मुगल दरबार की भव्यता लुप्त हो गई लेकिन भारत की आर्थिक व्यवस्था 18वीं शताब्दी के अंत तक प्राणवान बनी रही। मराठा साम्राज्य और नई रियासतों की स्थापना से समृद्धि के नए केंद्र स्थापित हो गए। बक्सर के युद्ध तक बाहर से सोना चाँदी भारत आ रहा था। यहाँ से कपड़ा, नील, मसाले, चीनी आदि का निर्यात हो रहा था। कृषि के व्यापारीकरण ने जमींदारों को, विशेषकर अवध और पूर्वी क्षेत्र के जमींदारों को समृद्ध बना दिया था। आर्थिक रूप से दिल्ली के लोगों की जो स्थिति थी वह पटना, पुणे, लखनऊ, हैदराबाद या केरल के लोगों की नहीं थी। इन क्षेत्रों में शांति और व्यवस्था के कारण व्यापार, उद्योग और कृषि को प्रोत्साहन मिला। इस सुखद आर्थिक स्थिति को 18वीं सदी के अंतिम दशक तक आते-आते कड़े झटके लगने लगे।

वेलेजली ने 'सहायक-संधि' के माध्यम से उन सभी भारतीय नरेशों और नवाबों पर अपना शिकंजा कस लिया जो एक-दूसरे से बचने के लिए ईस्ट इंडिया कंपनी की शरण में चले गए थे। भारतीय अर्थव्यवस्था का संचालन तब विदेशियों के हाथ में चला गया और उस साम्राज्यवादी शोषण का आरंभ हुआ जो सन् 1947 तक चलता रहा।

11.3.3 सामाजिक व्यवस्था

हिंदू समाज की वर्ण व्यवस्था सदियों पहले पेशेवर जातियों की व्यवस्था में बदल गई थी। रीतिकालीन समाज में सामंतशाही प्रबल होने की वजह से इसमें और भी कट्टरता आ गई। सामंतों के राजकीय वैभव का भार किसानों को वहन करना पड़ रहा था। दलित जातियों का शोषण यथावत जारी था। मुस्लिम समुदाय में भी जातिगत तत्वों का समावेश हो गया था। कुलीनता पर उन मुसलमानों का दावा था जो विदेशी, ब्राह्मण तथा क्षत्रियमूल के थे। भारतीय मूल के आम मुसलमानों को ये लोग हेय दृष्टि से देखते। जहाँ आम मुसलमान क्षेत्रीय भाषा या उर्दू का प्रयोग करते थे वहाँ अभिजात वर्गों में केवल फारसी का बोलबाला था। आर्थिक दृष्टि से समाज दो श्रेणियों में विभक्त था। एक, उत्पादक वर्ग जिसमें मुख्य रूप से किसान और कृषि से संबंधित व्यवसायों से जुड़ी जातियाँ, बढ़ई, लोहार, जुलाहा, धुनिया, कहार आदि। दूसरा, उपभोक्ता वर्ग जिसमें मनसबदार, जागीरदार, राजा, सामंत, जमींदार और बड़े व्यापारी आदि शामिल थे। इन दो वर्गों के बीच संबंध, शोषक और शोषित का था। ग्रामीण क्षेत्रों में बेगारी की प्रथा आम थी। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि इस युग में उत्पादक वर्ग का जीवन कष्टमय और निर्धन था तथा अभिजातवर्ग परजीवी था। वह बिना किसी श्रम के अपने पद, अधिकार और कुल के बल पर संपन्न था। इस वर्ग की विलासिता का यही एक मुख्य आधार था। विलासिता को इन्होंने अपने सामाजिक सम्मान का चिह्न बना लिया था। अनेक पत्नियों और रक्षिताओं के होते हुए भी तवायफों की संगत इनके लिए गौरव की बात थी। विलासिता इनकी सामाजिक शक्ति को व्यक्त करने का माध्यम थी।

अभिजातवर्ग की भोगवादी संस्कृति ने स्त्रियों को केवल भोग की वस्तु बना दिया था। अनेक सामाजिक प्रतिबंधों से घिरी स्त्री, पुरुष के अधीन तथा स्वामी की आज्ञाओं पर चलने के लिए बाध्य थी। बाल-विवाह की परंपरा सभी वर्गों में व्याप्त थी। राजपूत स्त्री के लिए पति के मरणोपरांत सती होना अनिवार्य था। पति के शव के साथ स्वयं भी चिता पर चढ़ जाना स्त्री के लिए सामाजिक गौरव का प्रतीक बना दिया गया था।

आम जनता शिक्षा से वंचित थी। शिक्षा का लाभ केवल वही उठा सकते थे जिनके पास शिक्षा पाने के निजी साधन थे। अंधविश्वास लोगों में व्यापक रूप से व्याप्त था। ज्योतिषी और झाड़फूँक करने वाले चाँदनीचौक की सड़कों पर डेरा डाले बैठे रहते थे। अन्य नगरों का भी यही हाल था। कुल मिलाकर लोगों में सामाजिक चेतना का अभाव था। समाज को सुधारने का स्वप्न किसी के पास नहीं था। यह काम अगली सदी के सुधारकों के आगमन तक स्थगित रहा।

11.3.4 धार्मिक व्यवस्था

भोग विलास के वातावरण ने धर्म के आदर्श अध्यात्म पक्ष को पृष्ठभूमि में ढकेल दिया। वैष्णव संप्रदायों के मठाधीश भौतिकतावादी हो गए थे। मंदिर ऐश्वर्य और विलासिता के केंद्र बन गए थे। राम और कृष्ण का अतिशय शृंगार होने लगा था। बाल कृष्ण नहीं, अपितु किशोर और युवा कृष्ण उपास्य बन गए थे। राधाकृष्ण प्रेमीयुगल की तरह प्रतिष्ठित हो चुके थे। रामलीला की तरह मथुरा, वृंदावन के मंदिरों में रासलीला रची जाने लगी।

औरंगजेब की धार्मिक असहिष्णुता से शेष समस्त समाज का धार्मिक वातावरण दूषित नहीं हुआ। बादशाह और कुछ अमीर मुसलमान भी हिंदुओं के होली, दीवाली जैसे उत्सवों में भाग लेते थे। निचले तबके के हिंदुओं के लिए पीरों की मज़ार पर माथा टेकना, मन्नत मांगना, चादर चढ़ाना, गण्डा, ताबीज़ बाँधना आम बात थी। साधारण मुसलमान के लिए भी पीर औलियों के मज़ार आराधना के केंद्र थे।

भक्तियुग के ईश्वरीय आराधना में लीन संतों और भक्तों का स्थान पीर, फ़कीर और साधुओं ने ले लिया था जिन्होंने धर्म को आस्था की बजाय आडंबर में बदल दिया था। हिंदू तीर्थस्थल पाखंडी पंडों से भरे थे जो धर्म की आड़ में भोले तीर्थयात्रियों को ठगते थे। ये रात में व्यभिचार व मदिरापान में लगते और सुबह उठकर स्नान-ध्यान-पूजा के बाद भक्तों को जप-तप का उपदेश देते। केशवदास ने इन पंडों का वर्णन इन शब्दों में किया है :

काम कुतूहल में विलसें निश वारवधू मनमान हरैं।
प्रात अन्हाइ बनाइ दै टीका और उज्ज्वल अम्बर अंग धरैं।
ऐसो तपो तप ऐसो जपोजप ऐसो पढ़ो श्रुति शास्त्र शरैं।
ऐसो योग जयो ऐसो यज्ञ भयो बहु लोगन को उपदेश करैं।

11.3.5 सांस्कृतिक स्थिति

मुगल साम्राज्य के विघटन से भाषा के स्तर पर एक क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ-देशज भाषाएँ संस्कृत और फारसी को चुनौती देने लगीं। जिन भाषाओं ने दरबार की ड्योढ़ी भी नहीं देखी थी, वे रीतिकाल में बीच दरबार में जा पहुँचीं। इसके दो कारण थे। एक, संत एवं भक्त कवियों ने देशज भाषाओं को अपनी कविता से एक पुनीत आभा प्रदान कर उन्हें लोकप्रिय बना दिया था। दो, नए आश्रयदाता प्रायः वे थे जो मुग़ल दरबार के संपर्क में नहीं आए थे। उनकी जड़ें स्थानीय संस्कृति में थीं। राजा की पदवी धारण करने वाले लोग अक्सर किसी बड़ी और पुरानी रियासत के मालिक नहीं, मुख्यतः हिंदू ज़मींदार वर्ग से आए हुए लोग थे। इनकी शिक्षा और ज्ञान का स्तर भी साधारण था किंतु अपनी परंपराओं से ये अपरिचित नहीं थे। राम और कृष्ण की लीलाओं का गान इस परंपरा का अभिन्न अंग था। दरबारों ने इन परंपराओं को सम्मान और स्वीकृति दी जिसे आश्रयदाताओं की रुचि के अनुरूप काव्य में ढालने का काम रीतियुगीन कवियों ने किया।

संस्कृतज्ञ कवियों ने भी समय की गति को पहचाना, आश्रयदाता की सीमाओं को समझा और अपनी सर्जना के लिए जनभाषा के परिष्कृत रूप को अपनाया। दरबारों में अब अकेले संस्कृत का ही वर्चस्व नहीं था और संस्कृत के पंडित और कवि तथा जनभाषा के कवि एक ही दरबार में एक साथ, एक दूसरे से टकराते हुए मौजूद हुआ करते थे।

संगीत, साहित्य और ललित कलाओं पर मुगल साम्राज्य के विघटन का कोई नकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ा। वास्तव में इनके लिए यह युग समृद्धि का युग साबित हुआ। सामंतशाही के प्रबल होने तथा अनेक छोटे-बड़े राज्यों के स्थापित होने से इनके आश्रयदाताओं की संख्या में पर्याप्त वृद्धि हुई। साधारण वर्ग में जन्मे कवि आश्रयदाताओं से सम्मानित होकर प्रतिष्ठित वर्ग में पहुँच जाते। सम्मान और पुरस्कार ही उनकी सफलता की कसौटी था। सर्जनात्मक स्वतंत्रता की कोई धारणा संभवतः उनके पास नहीं थी। उनके काव्य का स्वरूप उनके आश्रयदाताओं की रुचि से निर्धारित हुआ क्योंकि उनके समक्ष वही साक्षात उपस्थित श्रोता समाज था जिसके साथ उन्हें संप्रेषण

करना था। विलासिता में डूबे नवाबों और नरेशों को वही सुनना था जो उनकी अभिरुचि के अनुरूप था। इसलिए कवियों ने वाक् विचित्रता तथा उक्ति चमत्कार को अपना ध्येय बना लिया। अपने आश्रयदाता वर्ग के मनोरंजन के लिए इस युग के छोटे-बड़े लगभग सभी कवियों ने कामसूत्र में वर्णित नायक-नायिका भेद के अनुसार पात्र चुन कर उनके क्रिया-कलापों को कविता का बाना पहनाया। श्रृंगारिक रचनाएँ इसी मनोवृत्ति का परिणाम हैं। आश्रित कवि अंततः चाटुकार होने के लिए बाध्य हैं, इसका जीता जागता उदाहरण रीति युग के कवि हैं। अपने आश्रयदाताओं की प्रसन्नता के लिए उन्होंने अतिरंजित शैली में प्रशस्तियाँ लिखी हैं।

हिंदी साहित्य के साथ-साथ उर्दू के विषय में जानना भी इस समय के सांस्कृतिक दृश्य को समझने के लिए प्रासंगिक है क्योंकि दोनों का भौगोलिक क्षेत्र एक ही था और दोनों ही एक परिदृश्य में भागीदार थीं। उत्तर भारत का उर्दू साहित्य भी विलासिता के वातावरण से गहराई से प्रभावित हुआ था। सतत अव्यवस्था ने दिल्ली को पूरी तरह से वैभवहीन कर दिया था। साम्राज्य के विघटन से फारसी पुरानी प्रतिष्ठा खो बैठी थी। फारसी के जानकारों और पढ़ने-पढ़ाने वालों की संख्या बड़े पैमाने पर घटी इसलिए शायरों को मजबूरन अपनी जीविका चलाने के लिए जनभाषा उर्दू को अपनाना पड़ा। उर्दू अपनाने की इस मजबूरी को प्रसिद्ध शायर मीर तकी मीर ने दर्द के साथ अपनी आत्मकथा में व्यक्त किया है। वस्तुतः भाषा की जिस टकराहट से हिंदी कवि गुजरे उससे मुसलमान भी अछूते नहीं रहे। राजभाषा फारसी के स्थान पर उन्होंने पहले हिंदी को अपनाया फिर उर्दू को जो वास्तव में हिंदी में ही अरबी-फारसी शब्दों की बहुतायत से उर्दू में बदल गई थी। भाषा का यह चुनाव उनकी मजबूरी थी। अनिच्छा से ही सही, इस परिवर्तन को स्वीकार करने के लिए वे विवश थे। इस विवशता की अभिव्यक्ति नूरमुहम्मद की इन पंक्तियों में हुई है-

हिंदू मग पर पाँव न राखऊँ । का जो बहुतै हिंदी भाखेऊँ।।
X X X X
कामयाब यह कौन जगावा । फिर हिंदी भाखै पर आवा।।
छाँड़ पारसी कंद नवातै । अरुझाना हिंदी रस बातैं।।

दिल्ली के बड़े शायर जैसे 'आरजू', मिर्ज़ा 'जानजाना' और 'सौदा', दरबार की निकटता के कारण सम्माननीय बने रहने के लिए अपनी शायरी उर्दू के अलावा फारसी में भी रच रहे थे। लेकिन नए नवाबों और रईसों के लिए फारसी भले ही अब तक कामकाज की भाषा बनी रही हो, जीवन से जुड़ने की भाषा उर्दू बन चुकी थी। मीर ने भी अपनी आत्मकथा 'ज़िक्रे मीर' के लेखन के लिए फारसी को चुना किंतु अपनी शायरी के बारे में कहा', 'मेरी शायरी वही समझ सकता है जिसे जामा मस्ज़िद की सीढ़ियों पर बोली ज़बान आती हो।' उनकी घोषणा थी, 'शेर मेरे हैं गो ख़्वासपसंद/पर मुझे गुफ़्तगू अवाम से है।'

आर्थिक रूप से खोखली दिल्ली में शायरों की प्रतिभा को पोषित करने की सामर्थ्य नहीं थी। अतः दिल्ली के शायर, आश्रयदाताओं की खोज में फर्रुखाबाद, टांडा, अज़ीमाबाद (पटना), अवध और हैदराबाद की ओर गए। अवध के नवाबी दरबारों में दिल्ली के शायरों का खुलकर स्वागत हुआ। नाच-गाने की तरह काव्य भी यहाँ मनोरंजन का माध्यम मात्र था। शायरी भी विलास की शोभा बढ़ाने का एक उपकरण बन गई। उर्दू के पोषण में दिल्ली और हैदराबाद की तुलना में अवध बहुत आगे निकल गया। यहाँ जो उर्दू काव्य विकसित हुआ वह हिंदी के रीतिकाव्य की तरह मुहावरों की काटछाँट, अलंकृति, शब्दाडंबर से भरा था। उसमें कोई दार्शनिक गहराई नहीं थी।

नवाब की कृपा पाने के लिए शायरों में आपसी झगड़े होते रहते थे। मुशायरों में मुकाबले होते, चोटें चलतीं, स्वांग बनते, और हास बिगड़ कर व्यंग्य और निन्दा में परिवर्तित हो जाता। जीवन में भोग और विलास की जो भावनाएँ उत्पन्न हो रही थीं उसकी अभिव्यक्ति उर्दू शायरी में भी दिखती है। उर्दू साहित्य का मूल स्वर यही था जो स्वभाव में हिंदी के रीति साहित्य से भिन्न नहीं था।

बोध प्रश्न

1. रीति के पारिभाषिक अर्थ को तीन पंक्तियों में लिखिए।

....

....

....

2. रीतिकालीन सामाजिक व्यवस्था पर पाँच पंक्तियाँ लिखिए।

....

....

....

....

3. रीतिकाल की धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों पर पाँच वाक्य लिखिए।

....

....

....

....

4. निम्नलिखित में से सही/गलत पर उपयुक्त चिह्न लगाइए :

(क) दरबारों में केवल संस्कृत का ही वर्चस्व था। ( )

(ख) बादशाह तथा कुछ अमीर मुसलमान भी उस युग में होली, दीवाली जैसे उत्सवों में भाग लेते थे। ( )

(ग) विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने रीतिकाल को 'शृंगार काल' नाम से परिभाषित किया। ( )

(घ) उत्तर-मध्यकाल लगभग सन् 1643-1843 तक माना जाता है। ( )

11.4 ललित कलाएँ

मुगल चित्रकला शाहजहाँ के राजकाल में ही क्षय की ओर जाने लगी थी, औरंगजेब की नीतियों ने उसे पूरी तरह निष्प्राण कर दिया। मुगल दरबार के चित्रकारों को भी नए आश्रयदाताओं की तलाश हुई। राजस्थान तथा पहाड़ी क्षेत्रों की रियासतों में हिंदू नरेशों के संरक्षण में चित्रांकन की नई शैलियाँ विकसित हो रही थीं। ये मुगल शैली से

प्रभावित तो थीं लेकिन अपने ढंग से मौलिक और भिन्न भी थीं। बड़े-बड़े रजवाड़ों की देखादेखी छोटे-छोटे रजवाड़े, सामंत और जागीरदार आदि भी कलाकारों को संरक्षण देने के लिए उत्सुक थे। कलाकारों को संरक्षण देना सुरुचिसंपन्नता का प्रमाण, अपनी महिमा का प्रदर्शन और सामाजिक प्रतिष्ठा का कारण था। कांगड़ा, गुलेर, बसौली, किशनगढ़, बूँदी आदि रियासतों के संरक्षण में इन्हीं नामों की चित्रांकन शैलियों का विकास हुआ जिन्होंने मुगल प्रभाव को अपनी मौलिकता के मिश्रण के साथ ग्रहण किया। इन शैलियों को रियासत विशेष की कलम के नाम से जाना जाता है – काँगड़ा कलम, बूँदी कलम इत्यादि। कला एवं साहित्य की अपनी हिंदू परंपरा से जुड़ कर इन्होंने मौलिकता अर्जित की।

भारत में प्राचीन काल से ही धर्म और चित्रकला का चोली दामन का साथ रहा है। अजंता एलोरा आदि के भित्तिचित्र इसके साक्ष्य हैं। रीतिकाल में इनके आपसी संबंध बदल गए। अब चित्रकला धार्मिक भावनाओं की अभिव्यक्ति नहीं बल्कि ऐहिकता का अंकन थी यद्यपि चित्रित पात्र राधा और कृष्ण ही थे। इनका सर्वप्रिय आधारग्रंथ भागवतपुराण रहा है क्योंकि इसमें चित्रित राधा-कृष्ण के ईश्वरीय प्रेम का मानवीकरण आसानी से किया जा सकता था। फिर भी राधा-कृष्ण के नाम का आवरण उन्हें आवश्यक जान पड़ता था। उनकी इस मानसिक अनिवार्यता को भिखारीदास के इस कथन के प्रकाश में समझा जा सकता है-

आगे के कवि रीझिहैं तो कविताई, न तो/राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानो है।

इस काल में चित्रकला और साहित्य एक दूसरे के साथ अत्यंत घनिष्ठता से जुड़े हुए थे। कहा जा सकता है कि साहित्य चित्रकला पर हावी होता था। रीतिकाव्य जिन भावनाओं को शब्दों के द्वारा व्यक्त कर रहा था, चित्रों में वही रेखाओं और रंगों के द्वारा अंकित किया जा रहा था। कांगड़ा के चित्रकारों ने अपने चित्रों का विषय बारहमासा और नायिका-भेद को बनाया है। इसके लिए उन्होंने केशवदास की 'रसिकप्रिया' को आधार की तरह स्वीकार किया और चित्रों के ऊपर शीर्षक की तरह उनके दोहे अंकित किए। राजस्थान के चितेरों को भी 'रसिकप्रिया' से विशेष लगाव था। बूँदी कलम के चित्रों में इसके उदाहरण दिखते हैं। बसौली के चित्रकारों ने भानुदत्त की 'रसमंजरी' के सहारे अपनी रेखाएँ अंकित की हैं। मालवा और राजस्थान में केशव-काव्य के अलावा रागमाला और जयदेव के गीत-गोविंद को भी राधा-कृष्ण के नाम से नायक-नायिकाओं के चित्रण का आधार बनाया। रागमाला संगीत का वर्गीकरण है। एक रागमाला में पाँच पुरुष राग की पाँच रागिनियाँ होती हैं। रागमाला पर आधारित चित्रों में नायक-नायिकाओं के छत्तीस चित्र बनाए जाते हैं। इन सभी चित्रों में रीतिकवि की कल्पनाओं को बड़ी सजीवता से साकार किया गया है। विभिन्न नायिका भेदों का चित्रण करने के शास्त्रीय निर्देशों का निपुणता से पालन किया गया है। स्त्री की देहयष्टि के चित्रण का आग्रह अधिक था, भले ही उसे राधा का वेश पहनाकर उसके नायक को कृष्ण बना दिया गया हो।

संगीत के इतिहास में 18वीं सदी एक महत्वपूर्ण युग माना जाता है। इसे हिंदुस्तानी संगीत का स्वर्णकाल भी कहा जाता है। संगीत की इस समृद्ध विरासत को खड़ा करने का श्रेय मुग़ल बादशाह नसीरुद्दीन मुहम्मद शाह (सन 1719-1748) को है जो अपनी विलासिता के कारण मुहम्मदशाह रंगीला के नाम से प्रसिद्ध हुआ। संगीत अब एक पवित्र साधना नहीं,

मनोरंजन का सामान बन चुका था। शास्त्रीय ध्रुपद गायकी के स्थान पर खयाल गायकी, प्रतिष्ठा और लोकप्रियता में सबसे आगे आ चुकी थी। कलावंतों का स्थान वेश्याएँ ले रही थीं। ये खयाल गायन एवं नृत्य में निपुण हुआ करती थीं। उस समय के प्रसिद्ध संगीतकार सदारंग ने अनेक नए रागों की रचना की। मुहम्मदशाह की मृत्यु के बाद संगीत को जीवित रखने और समृद्ध बनाने की जिम्मेदारी भी देसी रियासतों ने उठाई जिसके फलस्वरूप संगीत के अनेक घरानों का जन्म हुआ जैसे पटियाला, ग्वालियर, कसूर आदि। खयाल के अतिरिक्त टप्पा, ठुमरी, दादरा आदि उपशास्त्रीय किस्म की गायकी रसिक समाज में अत्यधिक लोकप्रिय हुई। उपशास्त्रीय संगीत में रीतिकाव्य के भावतत्व का ही संगीतात्मक रूपांतरण हुआ।

स्थापत्य कला को इतनी आसानी से राज्याश्रय नहीं मिल सकता था। वह अवनति की ओर गई। यह भवननिर्माण की कला है। अकबर या शाहजहाँ की तरह विशाल भवनों के निर्माण के लिए जिस तरह की पूँजी आवश्यक है वह इन शासकों के पास नहीं थी। सफदर का मकबरा छोड़ इस युग में जो भी इमारतें अवध या अन्य रियासतों में बनीं, वे आकार में छोटी व स्तर में साधारण थीं। अवध के नवाबों ने लखनऊ में जो इमारतें बनवाईं उन पर यूरोपियन स्थापत्य की छाप स्पष्ट है। 19वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध समाप्त होने के पहले ही रीतिकाव्य और रीतिकालीन चित्रकला इतिहास की पृष्ठभूमि की ओर खिसकने लगे थे। अगली पीढ़ियों के लिए विरासत की तरह उपशास्त्रीय नृत्य और संगीत ही बचा था।

11.5 रीतिकाल के प्रेरणास्रोत

रीतिकाल को एक विशेष कालखंड की तरह परिभाषित करने का अर्थ यह नहीं कि रीति इसी काल तक सीमित कोई ऐसी विशिष्ट पद्धति थी जो इसके पहले अथवा बाद में शेष नहीं रही। इतिहास के प्रवाह को इस तरह निश्चित सीमाओं में बाँधा नहीं जा सकता। प्रवृत्तियाँ पहले भी मौजूद होती हैं और बाद में भी शेष रहा करती हैं, उनके आधार पर युग का नामकरण केवल उनके प्रमुख और केंद्रीय हो उठने का सूचक है।

रीतिसाहित्य वास्तव में अतीत में विकसित अनेक परंपराओं का संगम था और 'संगम' होने के कारण वह इन स्रोत-परंपराओं से भिन्न और मौलिक हो गया था, वैसे ही जैसे अलग-अलग दाल-चावल मिलाने पर एक तीसरे-खिचड़ी नामक-पदार्थ का रूप धारण कर लेते हैं। जिन परंपराओं के सामंजस्य से इस साहित्य का जन्म हुआ आइए, उन पर एक दृष्टि डालते हैं।

11.5.1 संस्कृत की शास्त्रीय तथा साहित्यिक परंपरा

रीतिकाव्य की शास्त्रीय परंपरा का सीधा संबंध संस्कृत काव्यशास्त्र के साथ है। यहाँ संस्कृत काव्यशास्त्र का सूक्ष्म व गहन विश्लेषण एवं काव्यदर्शन तो अनुपस्थित है पर भेदनिरूपण की प्रवृत्ति प्रबल हो चुकी है । रस, अलंकार आदि अवधारणाएँ मूलतः वहीं से आई हैं। इसके अतिरिक्त श्रृंगार की रचनासामग्री का काफी कुछ अंश वात्स्यायन के कामसूत्र से लिया गया है।

रीतिकाव्य की श्रृंगारिक परंपरा में संस्कृत काव्य का प्रभाव भी महत्वपूर्ण रहा है। अमरूक रचित 'अमरूशतक' और गोवर्द्धनाचार्यकृत 'आर्यासप्तशती' का नाम इनमें विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इनका अलंकरणप्रधान काव्यात्मक सौंदर्य रीतिकाव्य की पूर्वपरंपरा

को परिभाषित करता है। शृंगारिक साजसज्जा और भावव्यंजना के अनूठे विधान ने इनको रीति कवियों का प्रिय ग्रंथ बना दिया है। 'अमरूशतक' पद्माकर और बिहारी जैसे कवियों का प्रेरणास्रोत रहा है। भानुदत्त की 'रसमंजरी' पर 'आर्या सप्तशती' का प्रभाव दिखाई देता है। प्राकृत में रचित 'गाथा सप्तशती' भी एक प्रमुख प्रेरणास्रोत रही है।

रीतिकाव्य की शृंगार-परंपरा पर संस्कृत के स्त्रोत-साहित्य का प्रभाव भी रहा है। दैवस्तुति होने के बावजूद स्त्रोत-साहित्य अपने अलंकरण और काव्यसौंदर्य में ऐहिक काव्य के समकक्ष और संवेदना में शृंगारिक है। नख-शिख वर्णन का आलंकारिक सौंदर्य इसकी एक प्रमुख प्रवृत्ति है जिसका रीतिकवियों ने उत्साहपूर्वक वर्णन किया।

11.5.2 हिंदी का भक्तिसाहित्य

पहले से चली आती शृंगारिक काव्यधारा को भक्त कवियों ने खुले मन से अपना लिया था। उन्होंने उसकी दिशा को जड़ -जगत से मोड़ कर ईश्वरोन्मुख कर दी थी। भक्ति की सभी धाराओं में शृंगार का भाव मौजूद था। निर्गुण काव्य ने भी भगवत् प्रीति के प्रसंग में शृंगार को अनन्यभाव की अभिव्यक्ति के लिए उपयोगी पाया। कबीर ने 'राम भरतार' के लिए मंगलाचार गाया। दादूदयाल ने भी घोषित किया, 'पुरिष हमारा एक है, हम नारी बहु अंग/जे जे जैसी ताहि सों खेलै तिस ही रंग।' लौकिक प्रेम सूफ़ी कवियों का आधारभूत धरातल था।

सगुण भावधारा के कवियों के लिए शृंगार, भक्ति के उच्चतम धरातल तक पहुँचाने वाली तन्मयता का नाम था। रामभक्ति के लिए वह मर्यादित भाव था और कृष्णभक्ति के लिए उन्मुक्त और स्वच्छंद। कृष्णभक्त कवियों ने कृष्ण की प्रेमलीलाओं को अपने काव्य का प्रधान विषय बनाया। उन्होंने रूप, गुण, शील, वय, प्रकृति और अवस्था भेद से कृष्ण के प्रेमियों और प्रेमिकाओं की अनेक श्रेणियाँ कल्पित कर डाली हैं। कृष्ण भी उनको रिझाने के लिए बिसातिन, मनिहारिन, जोगिन, तमोलिन, केवट अनेक रूप धारण करते हैं। सूरदास ने गोपियों की विरह-व्यथा को व्यक्त करने के लिए बारहमासा लिखा। भक्ति साहित्य का प्रेम तत्त्व रीतिकाव्य के शृंगार तत्त्व के लिए एक प्रमुख स्रोत साबित हुआ।

हिंदी काव्यशास्त्र का सूत्रपात

आचार्य केशवदास को हिंदी में काव्यशास्त्र की नींव रखने का श्रेय प्राप्त है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने चिंतामणि त्रिपाठी को इस पद का अधिकारी माना है किंतु उनका मत डॉ. नगेन्द्र समेत हिंदी के बहुसंख्यक विद्वानों की स्वीकृति नहीं पा सका। देव, दास आदि परवर्ती रीतिकवियों ने केशव को ही आचार्य के रूप में श्रद्धांजलि दी है। केशव के बाद रीतिग्रंथों की रचना इस युग की एक परंपरा ही बन गई। इस परंपरा की पहली कड़ी में कृपाराम की 'हित तरंगिणी', नन्ददास की 'रसमंजरी', केशव की 'रसिकप्रिया' और 'कविप्रिया', सेनापति की 'काव्यकल्पद्रुम' और सुंदरदास की 'सुंदर शृंगार' का नाम लिया जा सकता है।

'रस रहस्य' के रचयिता कुलपति मिश्र, 'शब्द रसायन' के रचयिता देव, 'रसिक रसाल' के रचयिता कुमारमणि, 'काव्य सरोज' के रचयिता श्रीपति, 'काव्य निर्णय' के रचयिता भिखारीदास, 'काव्य विनोद', 'शृंगारमंजरी','अलंकार चिंतामणि', और 'काव्यविलास' के रचयिता प्रतापसाहि आदि इस आचार्य परंपरा के कुछ अन्य महत्वपूर्ण नाम हैं। काव्यशास्त्रीय ग्रंथ भले ही संख्याबहुल हैं, किंतु मौलिक एक भी नहीं है। आचार्य केशवदास ने भामह, उद्भट और दंडी के काव्यादर्शों का अनुगमन किया है। ये अलंकारवादी थे। संस्कृत

काव्यशास्त्र इसके आगे भी विकसित होकर रस और ध्वनि तक गया था। हिंदी का काव्यशास्त्र वहाँ तक नहीं पहुँचा। रस का जो विवेचन हुआ भी वह वस्तुतः नायिकाभेद तक ही सीमित और श्रृंगार की रचना का एक बहाना है। उसमें मौलिकता का अभाव तो है ही, विवेचन की सूक्ष्मता और गंभीरता भी अनुपस्थित है।

वास्तव में ये रीतिकालीन आचार्य कवि पहले थे, आचार्य बाद में, बल्कि कहा जा सकता है कि वास्तव में केवल कवि ही थे। आचार्य होने का दायित्व उन्होंने बेमन से ही निभाया। आपके मन में प्रश्न उठ सकता है कि फिर उन्होंने केवल कविता ही क्यों नहीं की, क्यों सीमित और सतही दृष्टि वाले रीतिग्रंथ लिखने का बीड़ा उठाया। इसके उत्तर के लिए किसी एक सामान्य कारण का निर्देश करना तो कठिन है किंतु केशव की कुछ पंक्तियों में मिलने वाले संकेत को लेकर एक प्रयास किया जा सकता है जो शायद सामान्यतः भी सत्य हो। केशव ने कहा था - 'भाषा बोलि न जानई जिनके कुल के दास/भाषाकवि मतिमन्द भो तेहि कुल केशवदास'।

इन पंक्तियों में भाषाकवि होने की विवशता को लेकर एक हीनता की ग्रंथि का आभास होता है। जिन दरबारों में ये कवि की हैसियत से आश्रित थे, उन्हीं में शायद संस्कृत के पंडितों को उनके पांडित्य के लिए अधिक सम्मान प्राप्त होता रहा होगा। रीतिग्रंथ की रचना द्वारा आचार्यत्व का दावा शायद किसी प्रकार की क्षतिपूर्ति रहा हो।

आश्रयदाता के संरक्षण में रहने वाले कवि के लिए यह आजीविका का भी प्रश्न था। रीतिग्रंथ की रचना आजीविका के अर्जन के लिए होती थी। ये काव्यशिक्षा के काम आने वाले ग्रंथ थे और प्रायः किसी आश्रयदाता के आदेश पर उसे काव्यविवेक की क्षमता देने के लिए रचे गए थे क्योंकि विकसित काव्यरुचि और कवि-कलाकार को संरक्षण देना उस युग में आभिजात्य की निशानी बन चुके थे। इन आचार्यों का उद्देश्य सिद्धांत का प्रतिपादन नहीं, लक्षण के उदाहरण के रूप में मौलिक कविता की रचना करना था।

11.5.3 भक्ति का रीति में रूपांतर

रीति के सूत्र वस्तुतः भक्ति युग में ही दिखने लगते हैं। सूरदास का 'साहित्यलहरी' और 'सूरसागर' में नायिका-भेद और संयोग-वियोग वर्णनों का जो रूप दिखता है उस पर शास्त्रीयता की छाप स्पष्ट है। काव्यकौशल के प्रति सजगता भी कृष्णकाव्य का अंग थी। नंददास के विषय में 'और सब गढ़िया, नन्ददास जड़िया' जैसी उक्ति भक्तिकाल में ही इस सूत्रपात का संकेत है।

रहीम कृत 'बरवै नायिकाभेद' और 'नगर शोभा', तुलसीकृत 'बरवै रामायण', एवं नंददास के कृतित्व के मूल में निश्चित रूप से कामशास्त्र की लौकिक प्रेरणा विद्यमान थी। कृष्णभक्त कवियों ने कृष्ण-राधा के रूप में नायक-नायिका की रतिकेलि का विशद वर्णन किया है। नायिकाभेद की उद्‌भावना इन्हीं ग्रंथों से हुई है।

भक्तिकाव्य के पहले से ही श्रृंगार की लौकिक भावना कविता में शामिल रहती आई थी। भक्तिकाव्य ने इसके उदात्तीकरण से लौकिकता को क्षीण भले किया हो, लुप्त नहीं किया था बल्कि कहना चाहिए कि कृष्णकाव्य ने गोपी-गोपाललीला से इसे थोड़ा बहुत उकसाया ही होगा। जैसे-जैसे भक्तिकाल के आरंभिक उन्मेष का उत्साह शिथिल पड़ता गया, भक्त कवियों में अनुकरण और पुनरावृत्ति बढ़ती गई, भावना की तन्मयता और समर्पण की जगह वाचिक अभ्यास मात्र शेष रह गया, वैसे-वैसे कविता में लौकिक श्रृंगार भावना तेजी से

सिर उठाती महसूस होने लगी। सत्रहवीं शताब्दी के बाद लगभग प्रत्येक कवि की कविता में राधा-कृष्ण और गोपियों के नाम तो मौजूद हैं, लेकिन भावना मूलतः ऐहिकतापरक शृंगार की ही रह गई है। भक्तों की संख्या अभी नहीं घटी, भक्ति का उत्साह भी संपूर्णता में वर्तमान रहा लेकिन साहित्य की मूल प्रेरक शक्ति के रूप में भक्ति शिथिल पड़ने लगी। यहाँ तक आते-आते कविता की प्रेरक शक्ति, काव्यकौशल का प्रदर्शन हो उठा। अलंकार, रस और नायिकाभेद अर्थात अलंकारशास्त्र, साहित्य को गति देने वाला प्रेरणास्रोत बनने लगा था जिसे उस काल में रीति, कवि रीति व सुकवि रीति कहने लगे थे। कृष्ण भक्ति काव्य में शृंगार के माध्यम से व्यक्त होने वाली परिष्कृत माधुर्य भावना में इतने मानवीय क्रियाकलाप शामिल हो गए कि अलौकिक से लौकिक में अंतर करना असंभव हो गया।

मधुरा भक्ति से भक्त कवियों ने जो धरातल रचा था उस पर खड़े होकर रीतियुग के कवियों ने अपने आश्रयदाताओं की रुचि के अनुसार उसका उत्फुल्ल मानवीकरण कर दिया। कृष्ण की प्रेयसी राधा, नायक की नायिका बन कर अनेक भेदों और उपभेदों में बँट गई। अलौकिक प्रेम के इस मानवीकरण में उस युग के आश्रयदाताओं की भूमिका निर्णायक रही है।

बोध प्रश्न

5. रीतिकाल में ललित कलाओं की स्थिति पर दस पंक्तियाँ लिखिए।

....

....

....

6. रीतिकाल की शृंगारिक परंपरा पर कौन-कौन से संस्कृत काव्यों का प्रभाव रहा है?

....

....

....

7. रीतिकाल के कवि रीतिग्रंथ लेखन की ओर क्यों प्रेरित हुए?

....

....

....

8. निम्नलिखित रिक्त स्थानों की पूर्ति उचित शब्दों द्वारा कीजिए-

(क) काँगड़ा के चित्रकारों ने अपने चित्रों का विषय .... और नायिका-भेद को बनाया।

(ख) स्थापत्य कला .... की कला है।

(ग) आचार्य .... ने भामह, दंडी और उद्भट के काव्यादर्शों का अनुगमन किया है।

(घ) 'काव्य कल्पद्रुम' के रचयिता .... हैं।

(ड) भानुदास की 'रसमंजरी' पर .... का प्रभाव दिखाई देता है।

11.6 अन्य विविध काव्यधाराएँ और उनका सामाजिक आधार

रीतिनिरूपण और इससे संबद्ध शृंगारिकता आदि प्रवृत्तियों से इतर आश्रयदाताओं और दरबारों के दायरे के बाहर खासे बड़े परिमाण में ऐसे काव्य की रचना भी हुई जो या तो शृंगारिक नहीं था, जिनमें कुछ पौराणिक और लौकिक प्रबंधकाव्य, कुछ नीति और कुछ भक्ति और ज्ञानविषयक उपदेश की कविताएँ थीं, अगर शृंगारिक था भी तो कामशास्त्रीय नायिका-भेद के परे उत्कट भावानुभूति का काव्य था। इस कविता में प्रेम-महात्म्य, विरह-व्यथा की कथा और प्रिय की निष्करुणता का वर्णन सम्यक् रूप से हुआ है। यह रीतिमुक्त कोटि का काव्य है। वीर रस की रचनाएँ अपनी एक अलग कोटि में आती हैं। वीर काव्य में प्रायः कवियों के आश्रयदाताओं के शौर्य पराक्रम की परिचायक घटनाओं या युद्धों का वर्णन अथवा कतिपय ऐतिहासिक-पौराणिक घटनाओं का वर्णन मिलता है।

11.6.1 उत्कट प्रेमानुभूति

बोधा, आलम, ठाकुर, द्विजदेव और घनानन्द जैसे कवियों की रचनाएँ रीतिकालीन शृंगार की क्रीड़ापरक अनुभूति के दायरे में नहीं समातीं। इनकी काव्यप्रेरणा स्वानुभूत विरह है, कोरा लक्षण प्रतिपादन नहीं। इनमें सामाजिक रूढ़ियों और जड़ मर्यादाओं के प्रति असहिष्णुता की भावना थी और उत्कट प्रेमावेग के बल पर उनको चुनौती देने का साहस भी। यहाँ व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर यथार्थ प्रेमानुभूति की अभिव्यक्ति है। इस प्रेम में एकनिष्ठता, अनन्यता और ध्यान-मग्नता अपनी चरम सीमा पर लक्षित होती है। इन कवियों में सर्वोच्च स्थान घनानंद का है। दरबार की संस्कृति उनके प्रेम के गहन गुरुत्व का वहन नहीं कर सकी। दरबार से निकल कर वे अपने वियोग की अनुभूति को भक्ति के दरवाजे तक पहुँचाने में सफल हुए।

11.6.2 भक्ति, ज्ञान, लोकज्ञान और नीतिकाव्य

सभी रीतिकवियों ने केवल आश्रयदाताओं के मनोरंजन में ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री मान ली हो ऐसा नहीं है। अनेक ऐसे भी कवि हुए हैं जिन्होंने अपनी कविता से लोकनीति का ज्ञान देकर आश्रयदाता के साथ-साथ जनसामान्य के लिए भी गुरु की भूमिका निभाई। वृंदकवि कृष्णगढ़ के राजा राजसिंह के गुरु तथा सर्वोच्च नीतिकार कवि थे। जाति, गाँव, परिवार, राजदरबार आदि स्थानों पर व्यवहार की रीतिनीति के बारे में उन्होंने सीधा-सादी सरल भाषा में तथ्यपूर्ण ढंग से बताया है। जैसे, 'भले बुरे सब एक सम जौ लौं बोलत नाँहिं जान परत हैं काग पिक रितु बसन्त के माँहिं।'

गिरधर कविराय की कुंडलियाँ नीतिकाव्य का लोकप्रिय एवं वृहत् अंश हैं। उनमें जीवन की पाठशाला में अनुभव से प्राप्त ज्ञान और लोकव्यवहार की शिक्षा है। उदाहरण के लिए-

रहिये लटपट काटि दिन वरु घामहिं में सोय,

छाँह न वाकी बैठिये जो तरु पतरो होय।

जो तरु पतरो होय एक दिन धोखा दैहै।
जा दिन बहे बयार टूटि पुनि जर से जैहै।
कह गिरिधर कविराय छाँह मोटे की गहिये।
पाता सब झरि जायँ तऊ छाया में रहिये।

दीनदयाल गिरि भी नीतिकाव्य के सर्जक थे। घाघ और भड्डरी ने कृषि और मौसम के विषय में लोक ज्ञान को संचित और समृद्ध करने वाला काव्य रचा। काव्यात्मक कौशल इनमें नहीं है। जैसे घाघ की प्रस्तुत पंक्तियाँ – 'नाटा खोटा बेचि कै चार धुरंधर लेई। जब आवै पावस रितु काम निकारै सोई', किंतु उनका नाम लेना यह जान लेने के लिए जरूरी है कि रीतिकाल में कविता का विषय केवल शृंगार और कवियों के रहने की जगह केवल राजदरबार नहीं था। काव्यकौशल तो इस बात पर निर्भर करता है कि कवि किसको सुनाने के लिए काव्य लिख रहा है और उस श्रोता समाज की रुचि क्या है। काव्यरुचि केवल पढ़े-लिखे अभिजात वर्ग की बपौती नहीं है। बल्कि इनके द्वारा हम शायद उस भारतीय जीवन की झलक भी पा सकते हैं जिसके दैनिक-जीवन-व्यवहार में ही कविता रची बसी थी।

मुख्यधारा से अलग अस्तित्व रखने वाले ऐसे कवि भी हुए जिन्होंने अपने कवि जीवन का आरंभ तो किसी दरबार से किया किंतु विरक्त हो कर निकल गए। कुछ स्वभाव से ही भक्त थे अतः दरबार में रहते हुए ही भक्तिकाव्य रचा या फिर स्वाभाविक विरक्ति के कारण दरबार का त्याग किया। इनमें कई तो ऐसे कविहृदय आश्रयदाता भी थे जो स्वयं रचनाकार थे। कविसुलभ संवेदनशीलता के कारण दरबारी जीवन उनके लिए एक हद के बाद सहनीय नहीं हुआ। इनमें दतिया के जमींदार पृथ्वीसिंह जिनका कविनाम 'रसनिधि' था, रींवा के महाराज विश्वनाथसिंह, कृष्णगढ़ के महाराज सावंतसिंह जो वृंदावन जाकर नागरीदास बन गए, असोथर, जिला फतेहपुर के शासक भगवंतराय खींची और घनानन्द के नाम लिए जा सकते हैं। ये सभी किसी न किसी प्रकार के मोहभंग के शिकार होकर भक्ति की ओर मुड़ गए।

इस युग में काव्यभाषा के अधिक परिष्कृत और समृद्ध हो जाने के कारण कविता में भाषागत आभिजात्य का आधिपत्य रहा है। भक्तिकालीन काव्य में उपलब्ध लोकभाषा के चलतेपन का इसमें प्रायः अभाव रहा है। इस प्रवृत्ति की कविता में भक्तिकालीन कवियों के भक्ति-भाव की सघनता और तीव्रता का प्रायः अभाव रहने के कारण यह तत्कालीन हिंदी जन-जीवन की परंपरागत आस्थाओं और विश्वासों की अभिव्यक्ति का मात्र साधन प्रतीत होती है। यह भक्तों की आराध्य के प्रति राग की उत्कटता और आत्मसमर्पण के भाव की अनुभूति कम ही करा पाती है।

11.6.3 वीररस का काव्य

वैसे तो दरबारी कविता में शृंगार के समान ही वीर को भी काव्य का विषय बनाया गया, परंतु इसका अधिकांश प्रायः चाटुकारिता का शुष्क प्रथापालन ही कहा जा सकता है। अपवाद हैं भूषण, लाल और सूदन। भूषण और लाल के काव्यनायक शिवाजी तथा छत्रसाल हैं। सूदन के काव्यनायक सूरजमल जाट हैं जिनका दूसरा नाम सुजानसिंह था। मुगलों से सीधी टक्कर लेकर इन नायकों ने भारतीय इतिहास में अपने लिए एक स्थान अर्जित किया है। इनके काव्य में वह गर्व, संतोष और उल्लास है जो मुगल साम्राज्य के

पतन से व्याप्त हुआ। उदाहरण के लिए भूषण की ये पंक्तियाँ –

दारा की न दौर यह, रार नहीं खजुवे की,
बाँधिबो नहीं है कैंधो मीर सहिवाल को,
मठ विश्वनाथ को, न बास ग्राम गोकुल को,
देवी को न देहरा, न मंदिर गोपाल को।
गाढ़े गढ़ लीन्हें अरु बैरी कतलाम कीन्हें,
ठौर ठौर हासिल उगाहत है साल को।
बूड़ति है दिल्ली सो सँभारे क्यों न दिल्लीपति,
धक्का आनि लाग्यौ सिवराज महाकाल कौ।

यह संतोष उस तत्कालीन राजनीतिक चेतना की परिणति है जो औरंगजेब की असहिष्णु नीतियों के परिणामस्वरूप क्षोभ और असंतोष बन कर हिंदू समाज में व्याप्त हो गई थी। शिवाजी, छत्रसाल और सूरजमल जाट की प्रशंसा में रचित इस काव्य में काव्यात्मक अतिशयोक्ति हो सकती है किंतु ऐतिहासिकता यथातथ्य सुरक्षित है। हिंदी साहित्य में इसे इतिहास और साहित्य का प्रथम समन्वय कहा जा सकता है क्योंकि इसके पहले आदिकाल में ऐतिहासिक नामों वाले नायकों की वीरगाथाएँ तो हैं किंतु उनमें केवल नाम ही ऐतिहासिक हैं। इन तीनों की कविता में जो चुनौती ध्वनित होती है वह आगामी इतिहास का संकेत है। यह कविता बताती है कि मुगल साम्राज्य की शक्ति ढलान के उस बिंदु पर पहुँच चुकी थीं जिसके बाद उसके साथ लोहा लेने के लिए कई ताकतें खड़ी होने वाली थीं। इसकी सफल शुरूआत शिवाजी ने कर दी थी। यह वीरकाव्य स्वभाव से राजनीतिक और आने वाले परिवर्तनों का सूचक था।

बोध प्रश्न

9. रीतिकालीन नीतिकाव्य पर पाँच पंक्तियाँ लिखिए।

....

....

....

....

....

10. रीतिकाल के वीर रस के प्रमुख कवियों की चर्चा कीजिए। (आठ पंक्तियों में)

....

....

....

....

....

....

....

....

11) निम्नलिखित वाक्यों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कोष्ठक में दिए गए सही विकल्प से कीजिए :

(क) गिरधर कविराय की कुंडलियाँ .... का लोकप्रिय अंश हैं। (नीतिकाव्य, भक्तिकाव्य)

(ख) कवि सूदन के काव्यनायक .... हैं।(शिवाजी, सूरजमल जाट)

(ग) उत्कट प्रेमानुभूति की कविता लिखने वालों में सर्वोच्च नाम .... का है। (आलम, घनानंद)

(घ) घाघ और भड्डरी ने .... को समृद्ध करने वाला काव्य रचा। (लोक ज्ञान, सामान्य ज्ञान)

11.7 सारांश

रीतिकालीन काव्य की परिस्थितियों का विस्तृत विश्लेषण अभी आपने इस इकाई में पढ़ा। इस इकाई के गहन अध्ययन से आप जान सके कि–

- रीतिकाल संवत् 1700 से 1900 तक का वह ऐतिहासिक काल है जिसमें रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध तथा रीतिमुक्त साहित्य लिखा गया।
- इस युग के साहित्य को 'रीति' अर्थात् 'पद्धति' विशेष के आधार पर वर्गीकृत किया गया है।
- रीतिकाल की उपलब्ध सामग्री के आधार पर उस युग में कवि, कवि-आचार्य तथा कवि-शिक्षक धर्म निभाने वाले साहित्यकार मिलते हैं।
- युग की परिस्थितियाँ साहित्यकार तथा साहित्य को प्रभावित भी करती हैं तथा उनसे प्रभावित होती भी हैं।
- रीतिकाल की राजनीतिक परिस्थिति विघटन, अशांति, भय, अस्थिरता तथा भोग-विलास की स्थिति थी। राज्य विस्तार लिप्सा के कारण युद्ध, मारकाट, षड्यंत्र, संघर्ष सभी कुछ यहाँ विद्यमान था।
- सामाजिक दृष्टि से रीतिकालीन भारतीय समाज वर्णों में विभाजित था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र। इन चार वर्णों में परस्पर मेल न था। एक-दूसरे पर आधिपत्य जमाने के प्रयास चल रहे थे। सभी अपने-अपने क्षेत्रों में मूलभाव से गिर रहे थे। पतन चहुँमुख था। अंधविश्वास, ढोंग, धोखा, रूढ़िवादिता, परदा प्रथा, सती प्रथा, बहु-विवाह प्रथा आदि दोषों से समाज पूर्णतः ग्रस्त था। आर्थिक दृष्टि से समाज की हालत खस्ता थी। वैश्य लूट में लगे थे। आदर्श मृतप्राय थे और कुंठा का साम्राज्य था।

- धर्म की दृष्टि से समाज में असहयोग था। परस्पर धर्मों के प्रति आस्था-विश्वास मिट चुके थे। धार्मिक सहिष्णुता नहीं रही थी। विलास-वासनाओं ने धर्म को दूषित कर दिया था। बाह्याडंबर चारों ओर छा गए थे हिंदू-मुस्लिम वैमनस्य बढ़ गया था। कृष्ण-राधा ईश्वरत्व से युवकोचित लीलाओं, चेष्टाओं पर आ पहुँचे थे। भक्ति संप्रदायों की धारणाएँ भी बदल गई थीं।

- सांस्कृतिक दृष्टि से रीतिकाल में बिखराव दिखाई दे रहा था। धर्म और नीति के क्षेत्र में कट्टरता बढ़ रही थी। सांस्कृतिक गरिमा खंडित होने लगी थी। आस्था और विश्वास बाह्याडंबरों में उलझ कर रह गए थे।

- साहित्य, कला एवं भाषा की दृष्टि से रीतिकाल गुण एवं परिमाण में भी अत्यंत समृद्ध रहा। ब्रजभाषा अपने पूर्ण उत्कर्ष पर पहुँची। रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध तथा रीतिमुक्त साहित्य का वैविध्य इस युग की उपलब्धि है। कवि दरबारी रहे और कविता भी जन-जीवन से दूर रही। परंतु परिस्थितियों के प्रभाव स्वरूप जो साहित्य निर्मित हुआ वह अपने भीतर अनेक विशिष्टताएँ समेटे था। संस्कृत का पर्याप्त प्रभाव इस युग के समग्र साहित्य पर रहा।

11.8 उपयोगी पुस्तकें

रीतिकाव्य की भूमिका : डॉ. नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली।

हिंदी साहित्य का उत्तर मध्यकाल : प्रो. महेन्द्र कुमार, आर्य बुक डिपो, करोल बाग, नई दिल्ली।

हिंदी साहित्य का वृहत् इतिहास (षष्ठ भाग) : संपादक, डॉ. नगेन्द्र, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।

11.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. देखिए भाग 11.2
2. देखिए उपभाग 11.3.3
3. देखिए उपभाग 11.3.4 और 11.3.5
4. (क) × (ख) ✓ (ग) ✓ (घ) ✓
5. देखिए भाग 11.4
6. देखिए उपभाग 11.5.1
7. देखिए उपभाग 11.5.2 (हिंदी काव्यशास्त्र का सूत्रपात नामक अंश)
8. (क) बारहमासा

   (ख) भवन-निर्माण

   (ग) केशवदास

   (घ) सेनापति

   (ङ) आर्यासप्तशती

9. देखिए उपभाग 11.6.2

10. देखिए उपभाग 11.6.3

11. (क) नीतिकाव्य

    (ख) सूरजमल जाट

    (ग) घनानन्द

    (घ) लोक ज्ञान

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 12 रीतिकालीन काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ - भाग-1

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्‌देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 'रीति' शब्द का अर्थ और उसका अभिप्राय

12.3 'रीतिबद्ध' और 'रीतिसिद्ध' काव्य से अभिप्राय

12.4 रीतिकाल के प्रमुख रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध कवि तथा उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ

- 12.4.1 रीतिबद्ध कवि तथा उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ
- 12.4.2 रीतिसिद्ध कवि तथा उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ

12.5 रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध कवियों के वर्ण्य-विषय

- 12.5.1 श्रृंगार
- 12.5.2 राजप्रशस्ति
- 12.5.3 भक्ति और दर्शन
- 12.5.4 नीति
- 12.5.5 प्रकृति तथा इतर विषय

12.6 रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध कवियों के काव्य की विशेषताएँ

12.7 सारांश

12.8 शब्दावली

12.9 उपयोगी पुस्तकें

12.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

12.0 उद्‌देश्य

प्रस्तुत इकाई में रीतिकालीन काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों के अंतर्गत रीतिबद्ध तथा रीतिसिद्ध काव्य पर चर्चा की गई है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- "रीति" शब्द का अर्थ समझा सकेंगे;
- रीतिबद्ध काव्य और रीतिसिद्ध काव्य के प्रयोग के तात्पर्य को समझा सकेंगे;
- रीतिबद्ध काव्य तथा रीतिसिद्ध काव्य के वर्ण्य विषयों का विश्लेषण कर सकेंगे;
- रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध काव्य का अंतर बता सकेंगे;
- रीतिबद्ध कवियों का वर्ग-विभाजन कर सकेंगे और
- रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध काव्य की विशेषताएँ समझा सकेंगे।

12.1 प्रस्तावना

आप जानते ही हैं कि सन् 1650 से 1850 ई. के बीच के समय को हिंदी साहित्य के इतिहास लेखकों ने 'रीतिकाल' नाम से अभिहित किया है। इस इकाई से पूर्व की इकाई में आपने जाना कि इस काल में किस प्रकार की परिस्थितियाँ विद्यमान थीं जिनके कारण हिंदी कविता में विभिन्न प्रवृत्तियों का उदय हुआ। यह वह समय है जब समस्त हिंदी-भाषी भारत और उसके आसपास के क्षेत्रों पर मुग़लों का आधिपत्य स्थापित हो गया था तथा सामान्य रूप से यहाँ के हिंदू राजा लंबे समय तक अपनी प्रभुता बनाए रखने के लिए मुसलमानों से जूझने के बाद अब उनकी अधीनता स्वीकार कर चुके थे। ऐसी स्थिति में शासक वर्ग के भीतर विलासिता उत्पन्न होना स्वाभाविक था। अतः विलासिता के उपकरणों को जुटाया जाने लगा। इन उपकरणों में कविता भी एक थी। इसके लिए राजदरबारों में कवियों को आश्रय दिया जाता था और वे अपने आश्रयदाता राजा नवाबों को कामोत्तेजक अथवा शृंगारिक कविताएँ सुनाकर उनका मनोरंजन करते थे। दूसरी ओर कुछ शासक ऐसे भी थे जो अपने तथा अपने पूर्वजों के शौर्य पराक्रम संबंधी चर्चाओं से प्रसन्न होते थे अतएव इन लोगों को प्रसन्न करने के लिए कवि लोग उनकी प्रशस्तियाँ लिखकर उन्हें सुनाते थे। उधर हिंदू कवियों तथा शासक समुदाय में अपने देवी-देवताओं के प्रति आस्था और विश्वास की भावना परंपरा से चली आ रही थी। इसके परिणामस्वरूप विशिष्ट अवसरों पर अथवा दैनिक क्रियाकलापों या शुभकार्य आरंभ करते समय या फिर जीवन के अंतिम दिनों में परलोक सुधारने की भावना से भक्ति और दर्शन संबंधी रचनाएँ भी कर ली जाती थीं। इधर राजदरबारों में होने वाले षड्यंत्रों आदि से अपने मित्रों को सावधान करने अथवा जीवन के खट्टे-मीठे अनुभवों को सुनाने के उद्देश्य से कवि लोग कभी-कभी नीतिपरक रचनाएँ कर लेते थे। इन सबके अतिरिक्त कभी आसपास के प्राकृतिक वातावरण से प्रभावित होकर और कभी अन्य प्रकार के भावों से विभोर होकर कवि लोग प्रकृति तथा अन्य विषयों से संबंधित रचनाएँ करने के लिए प्रेरित हो जाते थे। इस प्रकार इस काल में जिन विषयों से संबद्ध कविता लिखी गई, वे विषय हैं- शृंगार, राजप्रशस्ति, भक्ति, नीति, प्रकृति तथा अन्य विषय।

इस काल के कवि अपने आपको रीतिकवि और अपनी रचना को रीतिकाव्य शब्द से अभिहित करते थे। इसलिए आधुनिक काल में साहित्य का इतिहास लिखने वाले विद्वानों ने इस काल को 'रीतिकाल', काव्य के अंगों से संबंधित साहित्य को 'रीतिसाहित्य', इस साहित्य के रचयिताओं को 'रीतिकवि', या 'रीतिकार' तथा उनकी इस प्रकार के ग्रंथों की रचना करने की प्रवृत्ति को 'रीतिनिरूपण प्रवृत्ति' नाम दिया है। इस काल में साहित्य की सर्वव्यापक प्रवृत्ति 'रीतिनिरूपण की थी जिसने रीति कविता अथवा रीतिकाव्य को जन्म दिया। इस 'रीतिकाव्य' की दो धाराएँ हैं – रीतिबद्ध काव्य तथा रीतिसिद्ध काव्य। प्रस्तुत इकाई में इन्हीं दो धाराओं के विषय में विस्तृत चर्चा की जा रही है।

हमने इस युग तथा साहित्य के संदर्भ में चर्चा करते हुए 'रीति' शब्द को विशेषण के रूप में अनेक प्रकार से प्रयुक्त किया है, यथा 'रीतिकाल', 'रीतिनिरूपण', 'रीतिमुक्त', 'रीतिइतर', 'रीतिबद्ध', 'रीतिकवि', 'रीतिग्रंथ' आदि। किंतु यह स्पष्ट नहीं किया गया

कि 'रीति' शब्द का अर्थ क्या है और इसे किस अभिप्राय से ग्रहण किया जा रहा है। आपके मन में भी यह प्रश्न उठा होगा। किन्तु वहाँ उक्त शब्दों का प्रयोग करते हुए तथा संक्षेप में 'रीति' की परिभाषा देते हुए भी 'रीति' शब्द की व्याख्या करने की आवश्यकता इसलिए नहीं समझी गई क्योंकि 'रीतिनिरूपण', 'रीतिमुक्त' आदि शब्दों को प्रचलित संज्ञाओं के रूप में प्रयुक्त किया गया है। चूँकि इस इकाई में 'रीतिबद्ध' और 'रीतिसिद्ध' नामों को विशिष्ट संदर्भ में प्रयुक्त किया जा रहा है, अतः यह आवश्यक है 'रीति' शब्द के अर्थ और उसके तात्पर्य को अधिक विस्तार से स्पष्ट किया जाए। इससे 'रीतिबद्ध' और 'रीतिसिद्ध' नामों में निहित वैशिष्ट्य को अधिक गहराई तक समझा जा सकेगा। इसके साथ ही पूर्वोक्त रीति निरूपण, रीतिमुक्त आदि संज्ञाओं का अभिप्राय भी और अधिक स्पष्ट हो सकेगा। अतः प्रस्तुत इकाई का आरंभ 'रीति' शब्द के अर्थ और उसके प्रयोग से अपने अभिप्राय के स्पष्टीकरण से किया जा रहा है।

12.2 'रीति' शब्द का अर्थ और उसका अभिप्राय

संस्कृत काव्यशास्त्र के अंतर्गत 'रीति' शब्द काव्य के उस विशिष्ट अंग के लिए रूढ़ है जिसे काव्य की आत्मा के रूप में घोषित कर आचार्य वामन ने तत्संबंधी पृथक संप्रदाय का प्रवर्तन किया। इनके अनुसार, गुण-विशिष्ट रचना अर्थात् पद-संघटना की विशिष्ट पद्धति का नाम 'रीति' है। इधर व्याकरण के आधार पर 'गति' अर्थ वाली 'रीङ' धातु से 'क्तिन' प्रत्यय जोड़ करके इसकी जो व्युत्पत्ति कही जाती है, उससे यह शब्द मार्ग का वाचक ठहरता है। इस प्रकार उक्त दोनों शास्त्रों में इस अकेले ही शब्द के दो पृथक प्रयोग कहे जा सकते हैं। किंतु वास्तव में अर्थगत यह पार्थक्य किसी मौलिक विभेद का द्योतक न होकर व्यावहारिक विकास का ही परिणाम रहा है। बात यह है कि व्यक्ति अथवा वर्ग-विशेष अपने भावों की अभिव्यक्ति जिस विशिष्ट रूप में करता है, उसकी विशेषताएँ जब दूसरों के लिए अपने अभिव्यक्ति-व्यापारगत अनुकरण और अनुसरण का लक्ष्य हो जाती हैं तो उनकी पद्धति-विशेष, लोक-व्यवहार में 'मार्ग' शब्द से ही अभिहित होती है। संस्कृत काव्यशास्त्र के प्रमुख आचार्य दंडी का यह कथन कि काव्य-रचना के ये दो मार्ग – 'वैदर्भ' और 'गौड़' ही होते हैं, पर कवि में आश्रित होने के कारण इसके अनंत भेद हो जाते हैं। स्पष्टतः प्रदेश (अर्थात् वर्ग-विशेष) तथा व्यक्ति की अभिव्यक्ति-पद्धति को 'मार्ग' संज्ञा द्वारा स्वीकार किया गया है। वामन ने भी संभवतः रचना-पद्धति के लिए 'मार्ग' के इस परम्परागत प्रयोग को दृष्टि में रखकर ही उसके पर्याय-रूप में 'रीति' शब्द को ग्रहण किया है। इसका कारण यह है कि आचार्य दंडी ने जिन दो मार्गों और उनके नियामक दस गुणों का उल्लेख किया है, वे वामन ने भी ग्रहण कर रखे हैं। आगे संस्कृत के परवर्ती आचार्यों में भोज ने तो स्पष्ट शब्दों में 'रीति' की उपर्युक्त व्युत्पत्ति दर्शाते हुए उसे मार्ग का ही पर्याय माना है। ऐसी दशा में यह सहज ही स्वीकार किया जा सकता है कि संस्कृत काव्यशास्त्र में 'रीति' शब्द काव्य-रचना के मार्ग अथवा पद्धति-विशेष के अर्थ में ही व्यवहृत हुआ है। हिंदी के रीतिकालीन कवियों में भी अनेक ऐसे कवि हैं जिन्होंने काव्य-रचना पद्धति को 'रीति' और उसके पर्याय 'पंथ' से ही अभिहित किया है, उदाहरण के लिए-

1) चिंतामणि - रीति सुभाषा कवित्त की बरनत बुध अनुसार।

2) भूषण - सुकविन हूँ की कछु कृपा कविन को पंथ।

3) देव - i) अपनी-अपनी रीति के काव्य और कवि रीति।

ii) भाषा प्राकृत संस्कृत देखि महाकवि पंथ।

इनके अतिरिक्त हिंदी साहित्य के आधुनिक इतिहासकारों तथा आलोचकों ने भी इसी अर्थ में 'रीति' शब्द का प्रयोग किया है। मिश्र बंधुओं ने 'आचार्य' के कर्तव्य को दर्शाते हुए इस शब्द का जो स्पष्टीकरण किया है वह अपने आप में पर्याप्त है - ''आचार्य लोग तो कविता करने की रीति सिखलाते हैं, मानो वह संसार से यह कहते हैं कि अमुकामुक विषयों के वर्णनों में अमुक प्रकार के कथन उपयोगी हैं और अमुक प्रकार के अनुपयोगी।'' अतएव व्युत्पत्ति प्रयोग और परंपरा के आधार पर कहा जा सकता है कि 'रीति' शब्द संस्कृत के समान हिंदी में भी बहुत पहले से काव्य रचना पद्धति के लिए रूढ़ है। 'रीति' शब्द को इसी रूढ़ अर्थ में ग्रहण करते हुए कह सकते हैं कि 'रीतिकाव्य' वह काव्य है जिसकी रचना विशिष्ट पद्धति अथवा नियमों को दृष्टि में रखकर की गई हो। हिंदी साहित्य के उत्तर मध्यकाल अर्थात् रीतिकाल में अधिकांश कवियों ने संस्कृत काव्यशास्त्र के नियमों की बँधी-बँधाई परिपाटी पर ही अपने साहित्य की रचना की।

12.3 रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध काव्य से अभिप्राय

रीतिकाल की दो सौ वर्ष की दीर्घ कालावधि के बीच रचे गए साहित्य का यदि विश्लेषण करें तो ज्ञात होगा कि इसका दो-तिहाई से अधिक भाग ऐसा है जो काव्य के विभिन्न अंगों के विवेचन के निमित्त अथवा उन अंगों से संबंधित नियमों के अनुरूप लिखा गया है। हिंदी साहित्य के इतिहासकारों ने 'रीति' शब्द के उपर्युक्त अर्थ को दृष्टि में रखते हुए कदाचित् इसीलिए इसे 'रीतिसाहित्य' अथवा 'रीतिकाव्य' संज्ञा से अभिहित किया है। रचना-उद्देश्य के आधार पर इस साहित्य को तीन वर्गों में विभक्त किया गया है। इनमें एक वर्ग तो उन ग्रंथों का है जिनमें काव्यशास्त्रीय ज्ञान का प्रदर्शन ही उनके रचयिताओं का मुख्य उद्देश्य रहा - कवित्व-प्रदर्शन का प्रयत्न उन्होंने कम से कम इनके भीतर नहीं किया। इन ग्रंथों में सामान्य रूप से रस, अलंकार, छंद आदि विशिष्ट काव्यांगों के लक्षण और उदाहरण या तो इतने संक्षिप्त रूप में दिए गए कि कवित्व की दृष्टि से उनका महत्व ही नहीं रहा या फिर स्वरचित लक्षणों के साथ अन्य कवियों के उदाहरण देकर विषय के विवेचन पर इतना अधिक बल दिया गया कि रचनाकार की प्रतिभा सर्वथा पृष्ठभूमि में पड़ गई। ऐसे ग्रंथों को 'रीतिग्रंथ' अथवा 'शास्त्रीय ग्रंथ' कहा जाता है। दूसरा वर्ग उन ग्रंथों का है जिनमें रचयिता अपने शास्त्रज्ञान और कवित्व का समान रूप से प्रदर्शन करना चाहता है। इनके भीतर लक्षण तो स्वरचित हैं ही सभी उदाहरण भी कवित्व की दृष्टि से इतने उत्कृष्ट हैं कि रस, अलंकार, छंद आदि के विवेचन से संबद्ध होने पर भी अपना स्वतंत्र अस्तित्व एवं महत्व रखते हैं। इन उदाहरणों की विशेषता इस बात में निहित है कि ये कवित्वपूर्ण होते हुए भी काव्य-शास्त्रीय लक्षणों में पूर्णतः बँधे हुए हैं। काव्यांग-विशेष से संबद्ध विषय के लक्षण में जो बातें कही गई हैं, उनका इनमें यथासंभव अक्षरशः पालन किया गया है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित लक्षण एवं उदाहरण देखिए:

लक्षणः जाको बरनन कीजिए सो उपमेय प्रमान।
जाकी समता दीजिए ताहि कहत उपमान।।
जहाँ बरनिये दुहूनि की सम छवि को उल्लास।
पंडित कवि मतिराम तहँ उपमा कहत प्रकास।।

उदाहरणः प्रान पियारो मिल्यो सपने में परी जब नैसुक नींद निहोरे।
कन्त को आइबो त्यों ही जगाय कहे सखि बैन पियूष निचोरे।।
यों मतिराम भयो मन में सुखु बाल के बालम सों दृग जोरे।
ज्यों पट में अति ही चटकीलो चढ़े रंगु तीसरी बार के बोरे।।

लक्षण में कहा गया है कि जिस विषय का कवि द्वारा वर्णन किया जाता है उसे 'उपमेय' कहते हैं और जिस पदार्थ के साथ वर्णनीय विषय (उपमेय) की तुलना की जाती है उसे 'उपमान' कहा जाता है। जिस कविता में इन दोनों अर्थात् 'उपमेय' और 'उपमान' की (विशेषताओं की) तुलना की जाती है वहाँ पर 'उपमा' नामक अलंकार होता है। इसी लक्षण का उदाहरण देते हुए कवि कहता है कि एक दिन एक नायिका (स्त्री) परदेस गए हुए अपने पति को याद करते-करते सो गई और उसने सपने में देखा कि उसका पति उससे मिल रहा है। वह सपना देख ही रही थी कि इतने में उसकी सखी ने उसे जगाकर सूचना दी कि उसका पति आ गया है। और जब तक वह सँभलती तब तक उसका पति उसके सामने सचमुच आ खड़ा हुआ। पति का दर्शन पाकर उसे इस प्रकार आनंद मिला जैसे किसी महीन वस्त्र को रंग में तीन बार डुबोने से उसके ऊपर गहरा रंग चढ़ जाता है। अब देखिए यहाँ वर्णन का विषय (उपमेय) है, पति के विषय में नायिका के मन का आनंद, जो स्वप्न में पति-मिलन, सखी से उसके आगमन की सूचना और साक्षात् मिलन के कारण उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचा। इधर 'उपमान' है, कपड़े का क्रमशः पहली बार, दूसरी बार और तीसरी बार रंग में डुबोने पर गहरे रंग का हो जाना। इस छंद में उपमेय और उपमान की तुलना करके दिखाई गई है। अतः 'उपमा' अलंकार हुआ। कहने की आवश्यकता नहीं कि उदाहरणगत तुलना लक्षण में दी गई सभी बातों के अनुरूप है। छंद अत्यंत सरस अथवा कवित्वपूर्ण है। लक्षणों और उदाहरणों के इस प्रकार के समूह को 'रीतिबद्ध काव्य' की संज्ञा दी गई है क्योंकि इनमें अलंकार जैसे विशिष्ट काव्यांग का एक ओर विवेचन है तो उससे संबद्ध उदाहरण में कवि द्वारा अपने कवित्व का प्रदर्शन किया गया है।

'रीतिकाव्य' में तीसरा वर्ग उन ग्रंथों का है जिनमें रचयिता लक्षण देने के चक्कर में नहीं पड़ा - केवल अपना कवित्व-प्रदर्शन उसका उद्देश्य रहा है। इन ग्रंथों की विशेषता यह रही है कि इनका प्रत्येक छंद किसी लक्षण का उदाहरण न होते हुए भी किसी लक्षण का उदाहरण बन सकता है, कारण इनके रचयिताओं ने इनकी रचना करते समय जाने-अनजाने में काव्यशास्त्रीय नियमों का पालन कर लिया है। शास्त्रीय नियमों में बद्ध रीतिबद्ध काव्य संबंधी उदाहरणों से इन छंदों का अंतर यही है कि वे जहाँ किसी

विशिष्ट लक्षण के साथ जुड़े हुए हैं वहाँ ये शास्त्रीय नियमों में बद्ध होते हुए भी सर्वथा स्वतंत्र हैं। दूसरे शब्दों में काव्यशास्त्रीय नियमों की स्थिति इनके भीतर ही स्वतः सिद्ध है – अर्थात् काव्यशास्त्र संबंधी विशिष्ट नियम इनके भीतर सहज रूप से इतना घटा हुआ प्रतीत होता है कि यह उस नियम के लक्षण के अनुरूप रचा हुआ प्रतीत होता है। ऐसा लगता है कि वह नियम इस छंद की रचना के समय कवि के संस्कार में गहराई से बैठा हुआ था। एक उदाहरण देखिए-

तू रहि सखि हौं ही लखौं, चढ़ि न अटा बलिबाल।
सब हितु बनु ही ससि उदै, दीजतु अरघु अकाल।

किसी नायिका ने 'करवा चौथ' का व्रत रखा है। इस व्रत में स्त्रियाँ संध्या समय चंद्रमा को अर्घ्य देने के पश्चात् ही अपना व्रत खोलती हैं, क्योंकि स्त्रियों की यह धारणा है कि चंद्र दर्शन किए बिना व्रत खोलने से उनके पति की मृत्यु हो जाएगी। चूँकि इस तिथि (चौथ अथवा चतुर्थी) को चंद्रमा थोड़ी देर के लिए ही उदित होता है इसलिए नायिका जल्दी से छत पर जाकर चंद्रमा को देखना चाहती है। उसकी इस उतावली को देखकर उसकी सखी उससे कहती है कि हे सखी! तू रहने दे; मैं ही जाकर देखती हूँ कि चंद्रमा निकला है या नहीं। कारण, यदि तू जाती है तो कहीं ऐसा न हो कि अन्य स्त्रियाँ गलती से यह समझकर कि चंद्रमा निकल आया है, उसे अर्घ्य देकर अपना व्रत खोल दें। अब देखिए, यहाँ रीतिबद्ध काव्य संबंधी उपर्युक्त उदाहरण के समान नायिका के मुख (उपमेय) और चंद्रमा (उपमान) की तुलना तो नहीं की गई पर सखी के कथन से यह स्वतः स्पष्ट हो रहा है कि वह नायिका के मुख को चंद्रमा जैसा ही समझती है। यह उदाहरण इस बात का परिचायक है कि इस छंद की रचना के समय कवि के संस्कार अथवा अंतर्मन में मुख और चंद्रमा के उपमेय-उपमान भाव की बात गहराई से बैठी हुई थी तभी तो नायिका की सखी यह बात अप्रत्यक्ष रूप से कह बैठी। हिंदी साहित्य के इतिहासकारों ने इसी प्रकार की रचनाओं को 'रीतिसिद्ध काव्य' की संज्ञा दी है।

'रीतिबद्ध काव्य' और 'रीतिसिद्ध काव्य' के अभिप्राय संबंधी प्रस्तुत प्रसंग में यह बात स्पष्ट कर देना आवश्यक होगा कि हिंदी साहित्य के इतिहासकारों और आलोचकों का एक बड़ा वर्ग ऐसा भी है जो इन दोनों नामों को क्रमशः 'रीति काव्य' और 'रीतिबद्ध काव्य' संज्ञाओं से अभिहित करता है। किंतु हमने 'रीतिबद्ध काव्य' और 'रीतिसिद्ध' काव्य संज्ञाओं का प्रयोग दोनों की उक्त विशेषता के आधार पर करते हुए इन दोनों वर्गों तथा इनसे पूर्व के उक्त वर्ग के समग्र रूप को 'रीतिकाव्य' कहना उचित समझा है, क्योंकि ऐसा करने से नामों को लेकर आप लोगों के मन में किसी प्रकार की भ्रांति नहीं हो पाएगी।

12.4 रीतिकाल के प्रमुख रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध कवि तथा उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ

रीतिकाल की दीर्घकालावधि के अंतर्गत भारत के हिंदी भाषी क्षेत्रों में ही नहीं, अहिंदी भाषी क्षेत्रों में भी हजारों कवियों ने रीतिबद्ध तथा रीतिसिद्ध ग्रंथों की रचना की। आपकी

जानकारी के लिए इन दोनों वर्गों के प्रसिद्ध कवियों तथा उनकी कतिपय प्रसिद्ध रचनाओं का उल्लेख पृथक-पृथक कर रहे हैं।

12.4.1 रीतिबद्ध कवि तथा उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ

1) चिंतामणि - रस विलास, कविकुलकल्पतरु, छंद विचार।

2) मतिराम - रसराज, ललितललाम, वृत्तकौमुदी।

3) भूषण - शिवराजभूषण, अलंकारप्रकाश, छंदोहृदयप्रकाश।

4) सुखदेव मिश्र - रसार्णव, रसरत्नाकर, वृत्तविचार।

5) तोष - सुधानिधि।

6) जसवंत सिंह - भाषाभूषण।

7) कुलपति मिश्र - रस रहस्य।

8) मंडन - रसरत्नावली।

9) रंग खाँ - नायिकाभेद।

10) कुमारमणि - रसिकरसाल।

11) देव - भावविलास, भवानीविलास, कुशलविलास, रसविलास, काव्यरसायन (शब्दरसायन), सुजानविनोद।

12) उदयनाथकवीन्द्र - रसचंद्रोदय।

13) कृष्णभट्टदेव ऋषि - शृंगाररसमाधुरी।

14) सोमनाथ - रसपीयूषनिधि, शृंगारविलास।

15) रसलीन - रसप्रबोध।

16) भिखारीदास - काव्यनिर्णय, शृंगारनिर्णय।

17) रघुनाथ - काव्यकलाधर, रसिकमोहन।

18) जनराज - कवितारस विनोद।

19) रामसिंह - अलंकारदर्पण, रसशिरोमणि, रसनिवास।

20) गोप - रामालंकार, रामचंद्रभूषण, रामचंद्राभरण।

21) पद्माकर - जगद्विनोद।

22) प्रतापसाहि - व्यंग्यार्थ कौमुदी, काव्यविलास, शृंगारमंजरी।

23) रायशिवप्रसाद - रसभूषण।

24) बेनीप्रवीन - नवरसतरंग, शृंगारभूषण।

25) ग्वाल - रसिकानंद, रसरंग, साहित्यानंद।

26) चंद्रशेखर वाजपेयी - रसिकविनोद।

12.4.2 रीतिसिद्ध कवि तथा उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ

1) मतिराम - सतसई।

2) भूषण - शिवाबावनी, छत्रसालदशक।

3) बिहारी - सतसई।

4) तोष - नख-शिख, विनयशतक।

5) रसनिधि - रतनहजारा।

6) जसवंत सिंह - अपरोक्षसिद्धान्त, अनुभवप्रकाश, आनन्दविलास।

7) कुलपति मिश्र - नख-शिख।

8) वृंद - नीतिसतसई, यमकसतसई।

9) कालिदास त्रिवेदी - कालिदास हजारा।

10) नृपशंभु - नख-शिख।

11) देव - सुखसागरतरंग, अष्टयाम, नीतिशतक।

12) भूपति - सतसई।

13) चंदन - सतसई, नख-शिख।

14) विक्रम - सतसई।

15) हठी जी - श्रीराधा सुधाशतक।

16) पद्माकर - गंगा लहरी, प्रतापसिंह विरुदावली।

17) पजनेस - स्फुट छंद।

18) ग्वाल - भक्तभावन, कविहृदयविनोद, कुब्जाष्टक।

19) नवीन - सुधासर।

20) चंद्रशेखर वाजपेयी - नख-शिख।

उपर्युक्त दोनों तालिकाओं में कतिपय कवियों के नाम समान रूप से आए हैं, इसका कारण यह है कि इन कवियों ने अपने किसी ग्रंथ में काव्य के अंग-विशेष अथवा अंगों का लक्षण-उदाहरण देकर विवेचन किया है तो दूसरे में लक्षण न देकर अपने कवित्वपूर्ण छंदों का संग्रह किया है। इतना ही नहीं, कुछ कवियों के रीतिबद्ध ग्रंथ-विशेष के कुछ छंद उनके रीतिसिद्ध ग्रंथ-विशेष में भी संकलित हैं। इस आधार पर केवल यही कहा जा सकता है कि दोनों वर्गों के बीच कोई स्थूल व्यावर्तक रेखा खींचना कठिन है। कवि ने पहले कोई छंद लिखा और बाद में उसे अपने काव्यांग विवेचन संबंधी रीतिबद्ध ग्रंथ में जोड़ दिया अथवा रीतिबद्ध ग्रंथ के सरस छंद को रीतिसिद्ध ग्रंथ में जोड़ दिया। आखिर, रीतिबद्धता

और रीतिसिद्धता - दोनों में काव्यशास्त्रीय संस्कार तो समान रूप से रहते ही हैं, अंतर यदि है भी तो केवल इतना ही कि रीतिबद्ध काव्य रचना में काव्यशास्त्रीय नियमों का पालन अनिवार्यतः किया जाता है जबकि रीतिसिद्ध काव्य में से नियम संस्कारवश स्वतः फलीभूत हो जाते हैं। अतएव रीतिसिद्ध और रीतिबद्ध विशेषण कवि-विशेष के लिए न जोड़े जाकर उनके ग्रंथ अथवा रचना-विशेष के साथ ही जुड़ने चाहिए - एक ही कवि की रचनाएँ अपनी विशेषताओं के अनुसार भिन्न हो सकती हैं।

बोध प्रश्न

1) रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध काव्य किसे कहते हैं? पाँच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

2) 'रीति' शब्द के अर्थ को पाँच पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

....

3) रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध काव्य के रचयिता पाँच-पाँच कवियों के नामों का उल्लेख उनकी एक-एक प्रसिद्ध रचना के साथ कीजिए।

....

....

....

....

....

4) रीतिबद्ध काव्य और रीतिसिद्ध काव्य का अंतर दस पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

5) निम्नलिखित वाक्यों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कोष्ठकों में दिए गए विकल्पों में से किसी एक के द्वारा कीजिएः

क) रीतिकाल के अंतर्गत रीति शब्द का प्रयोग .... के अर्थ में किया जाता था। (मार्ग/गति)

ख) हिंदी साहित्य के अनेक इतिहासकार 'रीतिसिद्ध' काव्य के लिए .... का भी प्रयोग करते हैं। (रीतिबद्ध/रीतिशास्त्र)

ग) रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध काव्य का सर्वाधिक लोकप्रिय विषय .... है। (शृंगार/राजप्रशस्ति)।

घ) रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध काव्य में सबसे कम रचनाएँ .... संबंधित हैं। (शृंगार/इतर विषयों से)

ङ) रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध काव्य .... की दृष्टि से समान हैं। (अभिव्यंजना शैली/कल्पना वैभव)

च) वृंद .... कवि हैं। (रीतिबद्ध / रीतिसिद्ध)

छ) रसलीन .... कवि हैं। (रीतिबद्ध / रीतिसिद्ध)

12.5 रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध कवियों के वर्ण्य-विषय

काव्य-रचना यद्यपि कवि की कल्पना-शक्ति अथवा प्रतिभा का परिणाम हुआ करती है तथापि काव्य-दिशा का नियमन कवि की बाह्य परिस्थितियों तथा उसके वैयक्तिक संस्कारों द्वारा ही होता है - परिस्थितियाँ जहाँ इसे सामग्री प्रदान करती हैं, वहाँ संस्कार इसमें विशिष्टता लाते हैं। रीतिकालीन काव्य-विशेषतः रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध काव्य इन दोनों आधारभूत बातों के समन्वित योग का परिणाम है। बात यह है कि दोनों प्रकार का यह काव्य मुख्य रूप से इस काल के राजाओं, नवाबों अथवा श्रीमन्तों के आश्रय में लिखा गया। चूँकि ये आश्रयदाता अधिकांशतः विलासी थे और शृंगारिक कविता इनकी विलास-सामग्री का एक भाग बन गई थी, अतः यह स्वाभाविक ही था कि इनके आश्रय में रहने वाले कवि भी इस प्रकार की रचनाओं द्वारा इन्हें प्रसन्न करते। दूसरी ओर इन लोगों के बीच ऐसे वीर भी थे जिनके जीवन का अंग विलास के उपकरणों के स्थान पर युद्ध और उसका संदेश बन गया था। इन वीरों में एक वर्ग तो उनका था जिनके मन में भारतीय संस्कारों तथा राष्ट्रीय भावना का इतना प्राबल्य था कि विदेशी शासन को शक्ति के बल पर उखाड़ फेंकने के लिए मुगल शासकों के साथ प्रायः युद्ध करते रहते

थे और दूसरा उनका था जिन्हें राजनीतिक कारणों से अथवा मुगल शासन की रक्षा के निमित्त प्रतिपक्षी राष्ट्र वीरों के साथ युद्ध करने के लिए समय-समय पर युद्ध भूमि में जाना पड़ता था। इन दोनों वर्गों के योद्धाओं के आश्रयों में रहने वाले कवि या तो उनके युद्धों और पराक्रम का अतिरंजित वर्णन करके या फिर उनके दान, गुण और वैभव संबंधी प्रशस्तियाँ लिखकर उन्हें प्रसन्न करते थे। इधर, भक्तिकाल के संस्कार भी लोगों में चले आ रहे थे इसलिए कवि लोग प्रायः अपना परलोक सुधारने की भावना से अथवा ग्रंथ-विशेष के आरंभ में उसकी निर्विघ्न समाप्ति के लिए भक्ति और स्तुति-परक रचनाएँ भी रच लेते थे। साथ में दर्शन ग्रंथों के अध्ययन तथा दार्शनिक गोष्ठियों से थोड़ा-बहुत संपर्क होने के कारण ये कभी-कभी दर्शन-संबंधी छंदों की रचना कर लिया करते थे। इसके अतिरिक्त जीवन के कटु और मधुर अनुभव जहाँ इन्हें नीतिपरक रचनाएँ करने के लिए प्रेरित करते थे वहाँ विभिन्न स्थानों के आकर्षक प्राकृतिक दृश्यों के इनके मन पर पड़े हुए प्रभाव भी समय-समय पर इनकी रचनाओं में स्वतंत्र रूप से अभिव्यक्त होते रहते थे। रीति ग्रंथों का निर्माण करते समय विवेचन को पूर्ण बनाने के लिए अथवा किन्हीं अन्य कारणों से उक्त सर्वसामान्य विषयों के अतिरिक्त भी इतर विषयों पर इन्हें रचनाएँ करनी पड़ती थीं। इस प्रकार इस काल के आश्रय प्राप्त कवियों की रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध कविता के विषयों को मुख्यतः इन छः भागों में रखा जा सकता है - (1) श्रृंगार, (2) राजप्रशस्ति, (3) भक्ति और दर्शन, (4) प्रकृति, (5) नीति और (6) इतर विषय। रीतिबद्ध कवियों ने इन विषयों से संबद्ध रचनाओं को जहाँ काव्यांग-विवेचन संबंधी लक्षणों के उदाहरणों के रूप में प्रस्तुत किया है वहीं रीतिसिद्ध कवियों ने अपनी मुक्त रचनाओं के संग्रह-ग्रंथों को रखा है। चूँकि काव्यशास्त्रीय सीमाओं के बंधन के कारण इन छहों विषयों में कुछ विशिष्ट बातें ही वर्णित होती थीं, अतः यहाँ पर इनके विषय में हम अलग-अलग चर्चा करेंगे।

12.5.1 श्रृंगार

इस काल में श्रृंगार से संबंधित रचनाएँ जितनी लिखी गई हैं उतनी किसी अन्य विषय पर नहीं। इतना ही नहीं, इसका क्षेत्र भी अपने आप में इतना व्यापक है कि यह केवल श्रृंगार रस अथवा नायक-नायिका-भेद-निरूपण-संबंधी ग्रंथों तक ही सीमित नहीं रहा, अपितु यह काव्य के अन्य अंगों-शब्द शक्ति, अलंकार, रीति, वृत्ति आदि में व्याप्त है। किसी-किसी कवि ने तो इसकी व्यापकता स्थापित करते हुए अन्य रसों में भी इसे दर्शा दिया है। इस काल में रची गई श्रृंगारिक रचनाओं की सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि उनका आधार नितांत शास्त्रीय रहने के कारण इनकी अभिव्यंजना-पद्धति वर्ण्य वस्तु के साथ प्रायः एक जैसी ही रही है।

संस्कृत-काव्यशास्त्र के अंतर्गत इसके विषय में कहा गया है कि विभाव, अनुभाव और संचारी के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। चूँकि काव्य में संचारी व्यंग्य हुआ करते हैं अतः केवल विभाव और अनुभाव ही वर्णन का विषय हो सकते हैं। रीतिकालीन कवियों ने यद्यपि संचारी भावों का वर्णन अपने ग्रंथों में बड़े मनोयोग से किया है, फिर भी सभी रसों की कविताओं में उनके वर्णन का विषय सामान्यतः विभाव और अनुभाव ही रहे हैं - संचारियों की व्यंजना उन्होंने अनुभावों की सहायता से कराई है। श्रृंगारिक रचनाओं में भी उनके वर्णन का मुख्य विषय विभाव और अनुभाव ही रहे हैं। विभाव की परिसीमा में आलंबन और उद्दीपन आते हैं। रीतिकवियों की श्रृंगारिक रचनाओं के आलंबन, नायक-

नायिका, राधा और कृष्ण हैं जिन्हें लक्ष्य करके उन्होंने नायक-नायिका-भेद-निरूपण तथा रूप-वर्णन किया है। नायक-नायिका-भेद निरूपण में उनका वर्णन आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट विशेषताओं के आधार पर किया गया है। कर्म के अनुसार नायिकाओं के तीन भेदों- **स्वकीया, परकीया** और **सामान्या** का वर्णन करते समय क्रमशः पारिवारिक वातावरण, लोक-मर्यादा-व्याघात और धन-लालसा को दृष्टि में रखा ही गया है। साथ में प्रेम की स्वाभाविकता, उत्कटता तथा कृत्रिमता को भी विविध प्रकार से प्रायः व्यंजित किया गया है। स्वकीया के वयस्-अनुसार मुग्धादि भेदों में जहाँ लज्जा और काम की मात्रा को अनेक प्रकार से दर्शाया गया है वहाँ मान के अनुसार धीरादि भेदों में पति के अपराध के प्रति नायिका के तर्जन-ताड़न को विभिन्न व्यापारों द्वारा प्रकट किया गया है। परकीया के इन छह भेदों - गुप्ता, विदग्धा, लक्षिता, कुलटा, अनुशयना और मुदिता के वर्णन में विभिन्न चिह्नों, क्रियाओं, शारीरिक चेष्टाओं तथा परिस्थितियों को दृष्टि में रखते हुए इन्हें अनेक रूपों में प्रस्तुत किया गया है। सामान्या के वर्णन में धन के लिए रीति-विक्रय द्वारा उसकी निर्लज्जता के चित्र अंकित किए गए हैं। आगे स्वकीया, परकीया और सामान्या के प्रोषितपतिका, खंडिता, अन्यसंभोगदुःखिता, कलहांतरिता, विप्रलब्धा, उत्कंठिता, वासकसज्जा, स्वाधीनपतिका, प्रवत्स्यत्प्रेयसी, तथा अभिसारिका इन दस भेदों के वर्णन में साधारणतः तीनों प्रकार की अवस्थाओं तथा कर्म को दृष्टि में रखा गया है। प्रोषितपतिका की विरहावस्था का, खंडिता और अन्य संभोगदुःखिता की उक्तियों का, कलहांतरिता के पश्चाताप का, विप्रलब्धा और उत्कंठिता के मिलन-स्थल पर पहुँचने और क्रमशः प्रिय के न मिलने के दुःख तथा उसके मिलने की प्रतीक्षा का, वासकसज्जा द्वारा प्रिय-मिलन के लिए साज शृंगार किए जाने का, स्वाधीनपतिका का प्रिय-प्रेम पर गर्व करने का, प्रवत्स्यत्प्रेयसी की प्रिय-गमन-समाचार पर व्याकुलता का तथा अभिसारिका के दिन में अथवा अँधेरी या चाँदनी रात में अवसर के अनुकूल वस्त्र धारण कर अपने को लोकदृष्टि से छिपाकर जाने के प्रयत्न का वर्णन प्रायः इस विषय के सभी कवियों ने अनेक प्रकार के रंगीन और रेखा-चित्रों द्वारा किया है। इसी प्रकार शृंगारी नायिका के पति, उपपति और वैशिक, इन तीन भेदों तथा पति के चार भेदों - अनुकूल, दक्षिण, शठ और धृष्ट के वर्णनों में नायक की चेष्टाओं, उसके आचार-व्यवहार तथा प्रेमभाव का चित्रण भी सामान्यतः एक ही प्रकार से किया गया है। इन सबके अतिरिक्त स्वभाव, वर्ण, प्रांत आदि के अनुसार नायिका के भेदों, तथा विट, चेट आदि नायक के सहायकों का वर्णन प्रायः गुण, स्वभाव, वेशभूषा, क्रिया-व्यापार, कर्म आदि को दृष्टि में रखकर प्रस्तुत किया गया है।

शृंगार रस के आलंबन-वर्णन नायक-नायिकाओं के उक्त वैदग्ध्यपूर्ण वर्णन के अतिरिक्त इस काल के कवियों ने नायक-नायिकाओं के रूप का वर्णन भी पर्याप्त मात्रा में किया है और वह इसीलिए क्योंकि आश्रय के हृदय में रतिभाव जागृत करने का सबसे बड़ा कारण आलंबन का सौंदर्य हुआ करता है। चूँकि 'सौंदर्य' शब्द अपने भीतर एक ओर दृष्टा की अभिरुचि और दूसरी ओर रूप के विषय के गुणों को भी समाहित किए रहता है, इसीलिए रूप का वर्णन करते समय नायक-नायिकाओं के विभिन्न शरीरावयवों के चित्र प्रस्तुत करने में इन कवियों ने उनकी विशेषताओं के साथ अपनी अभिरुचि को भी सन्निविष्ट करने में स्वतंत्रता से काम लिया है। इन शरीर के अवयवों की सर्वसाधारण विशेषताओं को अंकित करने के लिए उन्होंने सामान्य रूप से परंपरागत उपमानों तथा विशेषणों का उपयोग किया है जबकि कवियों की अपनी अभिरुचि इन चित्रों में उनके द्वारा प्रयुक्त नवीन उपमानों तथा विशेषणों से प्रकट होती है। ये सभी उपमान और

विशेषण उन्होंने प्रकृति, लोक, शास्त्र आदि से ग्रहण किए हैं। कवियों की अभिरुचि के परिचायक नख-शिख-वर्णनों में कतिपय ऐसे चित्र भी हैं जो अपने-आप में भावात्मक कहे जा सकते हैं – जो केवल अनुभूति के ही विषय हैं।

आलंबन के पश्चात् विभाव का दूसरा पक्ष 'उद्दीपन' आता है। इसके भीतर इन कवियों ने एक ओर चंद्रमा की चाँदनी, कमल, सुगंधित पवन, चंदन, कर्पूर आदि कामोद्दीपक वस्तुओं तथा मधुर वातावरण के विधायक समस्त मानवेतर पदार्थों को प्रस्तुत किया है तो दूसरी ओर नायक-नायिका के वस्त्राभरणों, नायिकाओं की भावादिक चेष्टाओं और अलंकारों, नायक के विभिन्न गुणों और व्यापारों एवं नायिकाओं की सखियों, नायक के सहायकों तथा नायक अथवा नायिका की दूतियों की उक्तियों को नियोजित किया है। रीतिकाल के कवियों ने शृंगार रस के इस पक्ष को यथास्थान बड़े उत्साह और मनोयोग के साथ अपने वर्णनों का विषय बनाया है। उक्त तत्वों में चाँदनी, चंदन, सुगंधित पवन आदि जड़ पदार्थों की उद्दीपन-क्षमता की तो केवल व्यंजना ही हुई है, पर नैसर्गिक वातावरण देने वाली छह ऋतुओं और बारह महीनों के रंगीन चित्र तथा मादक वातावरण संबंधी रचनाएँ इस काव्य में पर्याप्त हैं। इनके अतिरिक्त नदी-सरोवरों के तटों, उपवनों तथा हरे-भरे और घने खेतों के एकांत, कलरव-मधु, शांत और शीतल सहेट-स्थलों के वर्णन भी प्रचुर मात्रा में हैं। दूसरी ओर सखी और दूती की उक्तियाँ नायक और नायिका – दोनों के प्रति अनेक प्रकार से मिलती हैं – कहीं पर इनके द्वारा नायिका को रतिक्रीड़ा-विषयक शिक्षा दी गई है, कहीं पर परिहास है, कहीं नायक को नायिका के अथवा नायिका को नायक के अनेक गुण बताए गए हैं तथा कहीं पर दोनों में से किसी को सावधानी न बरतने की फटकार है। इसके अतिरिक्त ऐसे भी स्थल हैं जहाँ नायक अथवा नायिका का अपने इष्ट को ले आने के लिए इनके आगे गिड़गिड़ाहट और इनके द्वारा मिला देने के वचन का वर्णन है। नायक के सहायकों के व्यापार और उक्तियाँ भी पर्याप्त हैं। इसी प्रकार नायिकाओं के आभूषणों तथा उनकी वेशभूषा के अनेक रंगीन और भड़कीले चित्र उपस्थित किए गए हैं। अभिसारिकाओं की अवसरानुकूल साजसज्जा तथा कुलटाओं और सामान्याओं का नग्न और भड़कीला शृंगार इन चित्रों में अधिक मुखर होकर आया है। जहाँ तक नायक के गुण-व्यापारों तथा नायिकाओं के हाव-भावादिक चेष्टाओं का प्रश्न है, ये भी इस काव्य के मुख्य वर्ण्य विषयों में से कहे जा सकते हैं। इनमें नायक-नायिका के गुण और व्यापार तो प्रायः व्यंजित हुए हैं, पर भाव सामान्य रूप से चित्रण का विषय ही रहे हैं। इनके अंकन में कवियों ने अपनी कल्पना का पर्याप्त प्रयोग किया है। प्रिय के वस्त्रों, अलंकारों आदि का अनुकरण (लीला); प्रिय को देखने पर गति, स्थिति आदि की विलक्षणता (विलास); कांतिवर्धन वेश-रचना (विच्छिदित); हड़बड़ी (विभ्रम); उसके द्वारा अनेक हाव-भावों की अभिव्यक्ति (किल किंचित); अपने अंगों को सुकुमारता से रखना (ललित); प्रिय की कथादि का श्रवण करते हुए कान आदि खुजलाना (मोट्टायित); गर्व के कारण अभिलक्षित वस्तु का अनादर (विव्वोक); लज्जा के कारण कंठावरोध (विह्त); सौभाग्य, यौवन आदि के कारण घमंड से उत्पन्न मनोविकार (मद); प्रिय-वियोग में कामचेष्टाएँ (तपन); रमणीय वस्तु को देखकर चंचल होना (कुतूहल); यौवनोद्गम से उत्पन्न अकारण हास, (हसित); प्रिय के समक्ष अकारण डरना (चकित) तथा विहार में प्रिय के साथ क्रीड़ा (केलि) – नायिका की इन सभी वैदग्ध्यपूर्ण चेष्टाओं रूपी 'हावों' का अंकन इस कविता की अपनी विशेषता है।

विभाव के पश्चात् रस का दूसरा वर्णनीय अंग अनुभाव आता है। उद्दीपन विभाव के समान अनुभावों की संख्या भी यद्यपि अनिश्चित है, किंतु इन्हें भी स्थान-भेद के अनुसार मुख्य रूप से तीन वर्गों में रखा गया है - 1. कायिक, 2. वाचिक, 3. सात्विक। इनमें कायिक अनुभावों की परिसीमा के अंतर्गत आश्रय की वे शारीरिक चेष्टाएँ आती हैं जो वह अपने विशिष्ट भाव को व्यक्त करने के लिए शरीरावयवों द्वारा करता है। जबकि सात्विक भाव उसके मन को होने वाली 'उस' भाव की सुख-दुःखात्मक अनुभूति के परिणामस्वरूप उसके शरीर पर स्वतः व्यक्त विशिष्ट परिवर्तनों को कहा जा सकता है। रीतिकालीन शृंगारिक रचनाओं में यद्यपि इन तीनों का वर्णन हुआ है, तथापि कायिक अनुभाव संबंधी सूचनाएँ दूसरे वर्गों के अनुभावों की तुलना में सर्वाधिक हैं। वाचिक अनुभावों का वर्णन भी पर्याप्त मात्रा में हुआ है। किंतु सात्विक भाव विषयक रचनाएँ प्रायः रस-निरूपण-संबंधी ग्रंथों के एतद् संबंधी विवेचन-प्रसंगों में ही उपलब्ध होती हैं। स्वतंत्र रूप से लिखी गई रचनाएँ अपेक्षाकृत कम हैं। वैसे कुल मिलाकर अनुभाव-वर्णन इस विषय की रचनाओं में अत्यंत मुखर ही नहीं, शृंगार के इतर अंगों की अपेक्षा अधिक मात्रा में भी है। इस काल में रचे गए ऐसे असंख्य शृंगारिक छंद मिल जाएँगे जिनमें केवल अनुभावों द्वारा ही रस की प्रतीति कराई गई है। अनुभाव वर्णन-संबंधी इन रचनाओं की सबसे बड़ी विशेषता यह रही है, कि प्रत्येक अनुभाव इतनी स्पष्ट रेखाओं द्वारा व्यक्त हुआ है कि उसका उभरा हुआ बिंब रचयिता के कला-कौशल का ही परिचय नहीं देता, उससे उस युग के रसिकों की सामान्य रुचि का दर्शन भी सहज ही हो जाता है।

विभावों और अनुभावों के अतिरिक्त शृंगार रस के दोनों भेद — संयोग और वियोग भी काव्य में प्रत्यक्ष वर्णन के विषय हुआ करते हैं। इनमें संयोग के वर्णन के अंतर्गत आलंबन और आश्रय के पारस्परिक हास-परिहास, आलिंगन, चुंबन आदि वे सभी व्यापार आ जाते हैं, जिनमें उनका मानसिक और शारीरिक नैकट्य प्रकट होता है। वियोग के अंतर्गत उनके शरीर और मन की वे सभी दशाएँ, चेष्टाएँ तथा उक्तियाँ आती हैं जो उनके शरीर अथवा मानसिक पार्थक्य की व्यंजना करती हैं। कहना न होगा कि रीतिकाल के समस्त शृंगारी कवियों ने विभावों तथा अनुभावों के समान ही शृंगार के इन दोनों भेदों का वर्णन रुचिपूर्वक किया है। संयोग के वर्णन में हास-परिहास, आलिंगन, चुंबन आदि का वर्णन तो अधिक परिमाण में नहीं हुआ पर संभोग के चित्रों में इनका ध्यान अधिक केंद्रित रहा है। वियोग-संबंधी रचनाओं में पूर्वराग की स्थिति जहाँ आश्रय को मिलन अभिलाषा की अभिव्यक्ति द्वारा व्यंजित की गई है वहाँ मान साधारणतः उसके पुरुष वाक्यों तथा रूठने के विभिन्न क्रिया-व्यापारों द्वारा दर्शाया गया है। प्रवास के वर्णन में आश्रय की शारीरिक और मानसिक दशा प्रायः अभिलाषा, चिंता, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि और जड़ता — काम की इन नौ दशाओं द्वारा चित्रित की गई हैं। वियोग के चौथे भेद करुण तथा मरण नामक दसवीं काम-दशा संबंधी रचनाएँ नाम मात्र की ही हैं लेकिन रीतिनिरूपक कवियों में से एकाध ने ही इनको लक्षणों के उद्धरणों के रूप में ही प्रस्तुत की हैं। इन नौ काम दशाओं के चित्रण के अतिरिक्त विरह-दशा का वर्णन, आश्रय की उपालंभ भरी उक्तियों, संदेशों तथा विरह-मोचन के अनेक क्रिया-व्यापारों के चित्रण द्वारा भी किया है। मान-मोचन की विधियों के वर्णनों में भी इन कवियों ने अपनी सूझ का अच्छा परिचय दिया है।

12.5.2 राजप्रशस्ति

श्रृंगार के पश्चात् राजप्रशस्ति रीतिबद्ध कवियों के वर्णन का दूसरा महत्वपूर्ण विषय है। इस विषय से संबद्ध रचनाएँ एक ओर अलंकार और पिंगल के निरूपण विषयक उन ग्रंथों में उपलब्ध होती हैं जो किसी आश्रयदाता की आज्ञा से अथवा उसे प्रसन्न करने के लिए लिखे गए और दूसरी ओर उन ग्रंथों तथा स्फुट छंदों के रूप में मिलती हैं, जो आश्रयदाता अथवा उसके किसी पूर्वज के जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं आदि को पद्यबद्ध करने के उद्‌देश्य से रचे गए। विषय-सामग्री की दृष्टि से इन रचनाओं को तीन वर्गों में रखा जा सकता है - (1) राजवैभव, (2) राजविलास, तथा (3) राजवीरता। इनमें राजवैभव संबंधी रचनाओं के अंतर्गत सामान्यतः आश्रयदाताओं की श्री-वृद्धि करने वाली विभिन्न वस्तुओं का वर्णन किया गया है। इनमें राजसंपत्ति, राजमहल और उनकी आंतरिक सज्जा; राजबल और उसके हेय, गज, आदि अंग; राजव्यवस्था और उससे प्रजा को मिलने वाली सुख-सुविधाएँ तथा राजभूमि और उसके दर्शनीय वन, बाग, तड़ाग आदि स्थल मुख्य विषय हैं। राजविलास-संबंधी रचनाओं में आश्रयदाताओं की जल-केलि, होली-वसंत आदि पर्वों के उत्सव इत्यादि का वर्णन किया गया है। किंतु संख्या की दृष्टि से ये रचनाएँ अपने आपमें बहुत अधिक नहीं कही जा सकतीं। जहाँ तक राजवीरता का प्रश्न है, उससे संबद्ध इस प्रशस्ति काव्य में परिमाण-बहुल वर्ण्य विषय, कवि के आश्रयदाता अथवा उसके (आश्रयदाता के) किसी पूर्वज के पराक्रम हैं। इसमें साधारण रूप से अपने आश्रयदाता या उसके पूर्व के पराक्रम-संबंधी दिगंत-व्यापी यश, उसकी सेना के अतुलनीय साहस और पराक्रम तथा शत्रुओं को नष्ट कर डालने तथा मित्रों को ऊँचा उठाने के गुणों का वर्णन करने के साथ-साथ शत्रुओं की कायरता और शक्तिहीनता का प्रायः उल्लेख किया गया है। इसके अतिरिक्त आश्रयदाताओं के सैन्य-प्रमाणों, युद्धभूमि में होने वाले घात-प्रतिघातों तथा शत्रु वर्ग में छाए उनके आतंक का वर्णन अनेक प्रकार के चित्रों द्वारा किया गया है। सैन्य-प्रमाण के समय सेना के घोड़ों की टापों से उठती हुई धूल द्वारा आकाशमंडल का आच्छादित होना, अंधकार हो जाना, हाथियों की चिंघाड़ से दिग्गजों का काँप जाना, पृथ्वी डगमगाना आदि बातें अतिशयोक्तिपूर्ण शब्दों में प्रस्तुत की गई हैं जबकि युद्धभूमि में होने वाले घात-प्रतिघातों का वर्णन बर्छी और तलवारों की चमक; बाणों की वर्षा आदि के द्वारा प्रस्तुत किया गया है। कवि के आश्रयदाता या उसके पूर्वज के आतंक का वर्णन प्रायः उसके शत्रुओं के इधर छिपे-फिरने तथा उनकी पत्नियों की घबराहट के विभिन्न चित्रों द्वारा किया गया है - कहीं-कहीं ये स्त्रियाँ अपने पतियों से उसके साथ युद्ध न करने का आग्रह भी करती दिखाई गई हैं। शत्रु-पत्नियों की दयनीय दशा के चित्र भी इस विषय की रचनाओं में विशेष स्थान रखते हैं।

पराक्रम के अतिरिक्त राजवीरता के वर्णनों में इन कवियों ने राजाओं की दानवीरता; धर्मवीरता और दयावीरता को भी प्रस्तुत किया है। इनमें दयावीरता संबंधी रचनाएँ तो संख्या में कम हैं पर धर्म और दानवीरता विषयक रचनाएँ प्रचुर कही जा सकती हैं। दानवीरता-संबंधी रचनाएँ भी पराक्रम-रचनाओं के समान ही परिमाण-बहुल हैं। इनमें कवियों ने अपने आश्रयदाताओं की दानवीरता का उल्लेख करते हुए प्रायः दान की वस्तुओं के अतिरंजित चित्रों द्वारा यह व्यंजित करने का प्रयत्न किया है कि दान करने में उनका कितना उत्साह है। दान की वस्तुओं में सजे हुए हाथी-घोड़ों तथा धन-संपत्ति का वर्णन ही इनका अभीष्ट रहा है। इसी प्रकार धर्मवीरता के वर्णनों में से लोग अपने आश्रयदाता की धर्मभीरुता, धर्मपालन, उनके शास्त्रज्ञान, शास्त्र-रक्षा, जाति और धर्म की रक्षा तथा

उसके लिए अपने जीवन का उत्सर्ग कर डालने तक की उनकी भावना एवं व्यापार का वर्णन करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं। दयावीरता के वर्णनों में तो केवल आश्रयदाताओं की दयालुता का यत्र-तत्र उल्लेख मिलता है।

12.5.3 भक्ति और दर्शन

रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध कवियों की कविता का तीसरा वर्ण्य विषय भक्ति और दर्शन है। इससे संबद्ध रचनाएँ मुख्यतः तीन रूपों में उपलब्ध होती हैं – (1) ग्रंथ की निर्विघ्न समाप्ति के लिए गणेश, सरस्वती आदि देवी-देवताओं की स्तुति के रूप में, (2) स्फुट छंदों के अतिरिक्त रीति निरूपण के प्रसंग में यत्र-तत्र अलंकारादि के उदाहरणों के रूप में; (3) तत्व चिंतन अथवा भक्तिपरक स्वतंत्र काव्य-ग्रंथों के रूप में। इनमें प्रथम वर्ग की रचनाओं में परंपरा का निर्वाह करते हुए कवियों ने इच्छानुसार विभिन्न देवी-देवताओं की स्तुति संबंधी छंद रच डाले हैं। इन छंदों में कवियों ने प्रायः देवी या देवता-विशेष के विभिन्न गुणों के बोधक विशेषणों द्वारा उसका जय जयकार किया है या फिर उससे कृपा की याचना की है – ग्रंथ की निर्विघ्न समाप्ति की प्रार्थना सामान्यतः स्पष्ट शब्दों में नहीं की गई। कहीं-कहीं उपास्य की लीलाएँ भी चित्रित कर दी गई हैं, पर ये संख्या में बहुत कम हैं। दूसरे वर्ग की रचनाएँ इन कवियों के वैयक्तिक संस्कारों का परिणाम कही जा सकती हैं। बात यह है कि पारिवारिक आस्थाओं तथा धर्म और दर्शन के ग्रंथों के श्रवण और अध्ययन के परिणामस्वरूप ये लोग किसी विशिष्ट देवी या देवता के उपासक न होकर पंच देवों – सूर्य, गणेश, शिव, शक्ति और विष्णु की सामान्य रूप से उपासना किया करते हैं। यही कारण है कि इनके प्रति इन्होंने भक्तिभाव प्रकट किया है। इनमें सूर्य के स्तुति परक छंद तो अत्यल्प हैं, पर शेष चारों के प्रति इनका भक्तिभाव स्पष्ट है। गणेश, शिव और शक्ति संबंधी रचनाओं में उनकी वरदायक शक्तियों के साथ वाहनों सहित उनके वही चित्र अंकित किए गए हैं जो आज भी प्रचलित हैं। विष्णु की भक्ति संबंधी रचनाओं के अंतर्गत इनके शंख-चक्र-गदापद्मधारी अथवा क्षीरसागर शायी रूप के अतिरिक्त उनके दो अवतारों- राम और कृष्ण की लीलाओं आदि के सामान्य उल्लेख तथा चित्रण के द्वारा उनके शील, सौंदर्य और शक्ति का वर्णन किया गया है। पंचदेवों के अतिरिक्त इन कवियों ने अन्य देवी-देवताओं, गंगा और यमुना की भक्ति संबंधी रचनाएँ भी लिखी हैं। इनके प्रेरक इन कवियों के हिंदू संस्कार ही रहे हैं। तीसरे वर्ग की रचनाएँ इन कवियों की वृद्धावस्था की हैं जबकि व्यक्ति का चित्त सांसारिक भोगों से ऊपर हो जाता है और वह अपना परलोक सुधारने की कामना से धर्म-दर्शन के ग्रंथों का श्रवण-अध्ययन करता है। इन रचनाओं में जो भक्तिपरक रचनाएँ हैं उनकी वर्ण्य सामग्री वही है जो उक्त दूसरे वर्ग की रचनाओं की है। जहाँ तक तत्व-चिंतन संबंधी रचनाओं का प्रश्न है, उनमें साधारणतः परमात्मा, जीव, जगत, माया, साधना, ज्ञान आदि की चर्चा है। इन सभी पर भक्तिकाल में प्रचलित संप्रदायों में से किसी-न-किसी का प्रभाव रहा है।

12.5.4 नीति

रीतिकाव्य का चौथा वर्ण्य विषय नीति है। ये रचनाएँ सामान्यतः रीति निरूपण-संबंधी ग्रंथों के अंतर्गत या तो उदाहरणों के रूप में यत्र-तत्र प्रस्तुत की गई हैं या फिर स्वतंत्र लक्ष्य ग्रंथों का निर्माण करते समय उनमें किसी प्रसंग के अनुसार अथवा मौज में आकर इस विषय के कतिपय छंद समाविष्ट कर दिए गए हैं। ये रचनाएँ रचयिताओं के दीर्घ अनुभव

से युक्त होने के कारण सामान्य व्यक्ति के लिए उपयोगी कही जा सकती हैं। चूँकि इनके भीतर प्रत्येक कवि के जीवनानुभवों की अभिव्यक्ति है, अतः इनके वर्ण्य विषय वैविध्यपूर्ण हैं।

12.5.5 प्रकृति तथा इतर विषय

इन कवियों की प्रकृति तथा इतर विषयों के वर्णन संबंधी रचनाएँ भक्ति और नीति संबंधी रचनाओं के समान बिखरी हुई हैं। प्रकृति-वर्णन संबंधी रचनाएँ प्रायः शृंगार रस की उद्दीपक सामग्री के वर्णन-प्रसंगों में ही देखने को मिलती है। इनमें षट्ऋतुओं - विशेषतः वसंत और पावस के भव्य और मादक रूपों को मनोयोग के साथ प्रस्तुत किया गया है। इनके अतिरिक्त कहीं-कहीं किसी वन, बाग की सुंदरता से प्रभावित होकर उसके मनोरम दृश्य को व्यक्त कर दिया गया है। इतर विषय संबंधी रचनाओं के अंतर्गत हास्य, वीर, रौद्र, करुण आदि रसों से संबंधित रचनाओं को रखा जा सकता है। ये साधारणतः रस निरूपण संबंधी प्रसंगों में प्रस्तुत की गई हैं। इनके अतिरिक्त कहीं-कहीं हास्य रस की रचनाएँ स्वतंत्र रूप से भड़ौवों के रूप में भी लिखी गई हैं। इनके विषय कंजूस, नपुंसक और ढोंगी व्यक्ति रहे हैं। वीर और रौद्र रसों संबंधी कतिपय रचनाएँ ऐतिहासिक व्यक्तियों के गुणों और क्रियाकलापों को लेकर प्रस्तुत की गई हैं। शेष रसों संबंधी रचनाएँ परिमाण में कम होने के कारण विशेष उल्लेख के योग्य नहीं कही जा सकतीं।

12.6 रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध कवियों के काव्य की विशेषताएँ

रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध काव्य के उपर्युक्त विषयों को देखने से स्पष्ट है कि दोनों में इस दृष्टि से पूर्ण समानता है। इतना ही नहीं दोनों की अभिव्यंजना पद्धति भी समान है जिसमें भाषा का स्वरूप और सौष्ठव एक कवित्त, सवैया और दोहे का मुक्तक की सभी विशेषताओं सहित प्रयोग दृष्टिगत होता है। इसके अतिरिक्त इन दोनों की सांस्कृतिक, साहित्यिक और काव्यशास्त्रीय पृष्ठभूमि तथा दरबारी परिवेश भी समान हैं। अंतर है तो यही कि रीतिबद्ध काव्यांग-विशेष के विवेचन में लक्षण के साथ उसके उदाहरण के रूप में लिखा गया है और रीतिसिद्ध लक्षणों के बिना और स्वतंत्र रूप से प्रस्तुत किया गया है - यद्यपि कवियों के काव्यशास्त्रीय सरोकारों के कारण नियमबद्धता इसके मूल में भी विद्यमान है। इसमें संदेह नहीं कि पृष्ठभूमि और अभिव्यंजना शैली के साम्य को दृष्टि में रखते हुए यह अंतर अपने आप में इतना स्थूल है कि इसके आधार पर दोनों में पार्थक्य करना अनावश्यक प्रतीत होता है तथापि इन दोनों काव्यों के बीच ऐसी विशेषताएँ अवश्य हैं जिनके द्वारा दोनों के बीच विभाजक रेखा खींची जा सकती है। बात यह है कि रीतिनिरूपक कवियों ने अपने काव्यांग-विवेचन की सफलता के लिए उदाहरणों की रचना करते समय इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखा है कि लक्षणों के भीतर जो बातें कहीं गई हैं उनका निर्वाह इनमें (अर्थात् उदाहरणों में) पूरी तरह से हो जाए। इसका परिणाम यह हुआ कि कविता के लिए अनुभूति और अभिव्यक्ति की जिस सहजता की अपेक्षा होती है वह उसके नियमबद्ध रहने की विवशता के कारण कुछ ऐसी बढ़ गई है कि रचनाएँ प्रायः बौद्धिक एवं जड़ प्रतीत होती हैं - उनमें भावुकता के अभाव में वह लोच-लचक नहीं आ पाई जो हृदय को स्पर्श करती है। कदाचित इसीलिए विभिन्न लक्षणकारों की काव्य कृतियों के छंदों के भीतर मन में ऊब उत्पन्न करने वाली एकरूपता इतनी अधिक आ गई है कि एक कवि की रचना दूसरे की रचना का भिन्न

शब्दावली में मात्र उलथा प्रतीत होती है। इसके विपरीत रीतिसिद्ध कवियों के समक्ष इस प्रकार की कोई विवशता न रहने के कारण उन्हें इतनी अधिक स्वतंत्रता प्राप्त रही है कि कल्पना की परतों का पूर्ण प्रसार कर वे अपनी अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों में एक प्रकार की ताज़गी उत्पन्न कर गए हैं। इसी ताज़गी के कारण ही इनके बिंब शास्त्रीय ढाँचे में आबद्ध रहते हुए भी, रेखाओं की सूक्ष्मता, उभार, गांभीर्य, वक्रता आदि के वैशिष्ट्य से जहाँ अधिक नवीन एवं चमत्कारपूर्ण लगते हैं वहीं उनकी अभिव्यक्ति धारदार होकर अपेक्षाकृत अधिक पैनी हो गई है। रीतिबद्ध कवियों के काव्य के साथ इनकी रचनाओं को रखते ही यह सहज अनुभव हो जाता है कि जहाँ वे सायास अभ्यास जन्य एकरूपता के कारण शिल्पकृतियाँ रह गई हैं वहाँ ये अपने रचयिताओं के प्रतिभा-कौशल का पग-पग पर परिचय देकर उनके कलाकार होने की घोषणा करती हैं। किंतु इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि रीतिबद्ध काव्य असुंदर है और कवि इसकी रचना यंत्रवत करते रहे। उनकी रचना-प्रक्रिया में ऐसे क्षण प्रायः आते रहे हैं जब उनकी भाव-प्रवणता ने प्रखर होकर काव्यशास्त्र की जकड़न से उनकी कविता को उबारा है। ऐसे क्षणों की रचनाओं में वे सभी विशेषताएँ विद्यमान हैं जो रीतिसिद्ध कवियों के काव्य में मिलती हैं। अपनी यांत्रिक और सरस रचनाओं के अंतर को रीतिबद्ध कवि संभवतः समझते थे यही कारण है कि अपने मुक्तक संग्रहों अथवा प्रबंधकाव्यों में उन्होंने इस प्रकार की सरस रचनाओं को सम्मिलित करने में संकोच नहीं किया। इन ग्रंथों में वे रीतिसिद्ध कवियों के समान ही प्रतिभाशाली कलाकार के रूप में दृष्टिगत होते हैं। कहने का अभिप्राय यही है कि रीतिसिद्ध काव्य रीतिबद्ध काव्य का एक प्रकार से परिष्कृत रूप है।

बोध प्रश्न

6) रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध काव्य के वर्ण्य-विषय का परिचय लगभग पंद्रह पंक्तियों में दीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

7) रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध काव्य की विशेषताओं का उल्लेख पंद्रह पंक्तियों में कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

8) निम्नलिखित में से सही/गलत पर उपयुक्त चिह्न लगाइएः

क) 'रसचंद्रोदय' रीतिसिद्ध रचना है। ( )

ख) 'सुखसागरतरंग' रीतिबद्ध रचना है। ( )

ग) 'रसप्रबोध' रसलीन की रचना है। ( )

घ) वृंद ने 'नीति सतसई' की रचना की। ( )

ङ) भूषण ने 'ललितललाम' की रचना की। ( )

12.7 सारांश

हमने इस इकाई में पढ़ा कि रीतिकाल के अंतर्गत जिन कवियों ने काव्यांगों का विवेचन करते हुए लक्षणों के साथ उदाहरण दिए उन्हें आज के आलोचक और साहित्येतिहासकार 'रीतिबद्ध' कवि तथा उनकी उदाहरण रूप काव्य रचनाओं को 'रीतिबद्ध' काव्य की संज्ञा देते हैं। इसके साथ जिन कवियों ने काव्यशास्त्रीय नियमों के संस्कारों में बाँधकर कविता की, उन्हें 'रीतिसिद्ध' कवि तथा उनकी रचनाओं को 'रीतिसिद्ध' काव्य कहा जाता है।

रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध काव्य श्रृंगार, राजप्रशस्ति, भक्ति और दर्शन, नीति तथा प्रकृति और इतर विषय - इन पाँच विषयों में लिखा गया है। श्रृंगार काव्य के भीतर श्रृंगार रस के विभावादि अंगों तथा संयोग और वियोग नामक उसके भेदों तथा इन सबके उपभेदों के विवेचन के प्रसंगों में लिखा गया है। अतः यह सभी दृष्टियों से पूर्ण है। राजप्रशस्तिपरक काव्य के भीतर उक्त कवियों ने अपने आश्रयदाताओं की युद्धवीरता, दानवीरता और धर्मवीरता का वर्णन प्रचुर परिमाण में और दयावीरता का उल्लेख रूप में वर्णन किया है। इनमें आश्रयदाताओं के आतंक और उनके द्वारा किए गए दान की सामग्री का विशेष रूप से वर्णन हुआ है। भक्ति और दर्शन संबंधी रचनाओं में इन कवियों ने अपनी आस्था और विश्वास के अनुरूप विभिन्न देवी-देवताओं के प्रति अपनी भक्ति तथा उस काल में प्रचलित दार्शनिक मतों को प्रस्तुत किया है। नीतिपरक रचनाओं में आत्मबोध अथवा किसी मित्र को उचित-अनुचित का बोध कराने के उद्देश्य से प्रायः अन्योक्तियों में उपदेश दिया गया है। प्रकृति संबंधी रचनाएँ श्रृंगार रस की उद्दीपक सामग्री अथवा वन-बागों के मनोरम वातावरण को प्रस्तुत करने के रूप में आई हैं, जबकि अन्य विषयों संबंधी रचनाएँ हास्य, करुण, वीभत्स, वात्सल्य आदि रसों के विवेचन के संदर्भ में लिखी गई हैं और परिमाण में अत्यल्प हैं। इन विषयों से संबंधित रचनाएँ समान रूप से रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध कवियों ने की हैं।

रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध काव्य में वर्ण्य विषय तथा अभिव्यंजना शैली की दृष्टि से विशेष अंतर नहीं तथापि दोनों के बीच विभाजक रेखा इसी आधार पर खींची जा सकती है कि रीतिबद्ध काव्य संबंधी रचनाएँ काव्यशास्त्रीय लक्षणों के अनुरूप लिखी जाने के कारण नियमों में इतनी जकड़ी हैं कि नितांत एकरूप तथा जड़ प्रतीत होती हैं जबकि रीतिसिद्ध काव्य की परिचायक रचनाएँ काव्यशास्त्रीय संस्कारों के परिवेश में लिखी होने पर भी कवियों को अपनी कल्पना के पंखों को फैलाने की छूट देती हैं। इसी कारण वे अधिक ताज़ा तथा सरस हैं। किंतु, यह रेखा वहाँ टूटी हुई दिखाई देती है जहाँ पर कवि नियमबद्ध रचनाओं में भी अपनी कल्पना के वैभव को दिखा गए हैं।

यही कारण है कि रीतिबद्ध रचनाएँ उनके रीतिसिद्ध काव्य की रचनाओं के संग्रहों में समान रूप से देखी जा सकती हैं।

12.8 शब्दावली

अभिहित किया जाना : पहचाना जाना

सर्वव्यापक : सभी जगह मौजूद

व्यवहृत : प्रयुक्त

अक्षरशः : एक-एक अक्षर का

अतिरंजित : बढ़ा चढ़ा कर कहे गए

शरीरावयवों : शरीर के अंगों या हिस्सों

कामोद्दीपक : काम भाव को उद्दीप्त करने या जगाने वाले

निर्विघ्न : बिना किसी बाधा या रुकावट के

परिमाण : मात्रा

12.9 उपयोगी पुस्तकें

हिंदी साहित्य का उत्तरमध्यकाल : रीतिकाल - डॉ. महेंद्र कुमार; आर्य बुक डिपो; करोल बाग, नई दिल्ली।

रीतिकाव्य की भूमिका - डॉ. नगेंद्र; नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली।

हिंदी साहित्य - विश्वनाथ प्रसाद मिश्र।

हिंदी साहित्य का इतिहास - संपादक, डॉ. नगेंद्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली।

हिंदी साहित्य का अतीत - विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

परंपरा का मूल्यांकन - रामविलास शर्मा

12.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

1) देखिए भाग 12.3

2) देखिए भाग 12.2

3) देखिए उपभाग 12.4.1 तथा 12.4.2

4) देखिए भाग 12.3 और 12.7

5) (क) मार्ग (ख) रीतिबद्ध (ग) शृंगार (घ) इतर विषयों से (ङ) अभिव्यंजना शैली (च) रीतिसिद्ध (छ) रीतिबद्ध

6) देखिए भाग 12.5

7) देखिए भाग 12.6

8) (क) ग़लत (ख) ग़लत (ग) सही (घ) सही (ङ) ग़लत

इकाई 13 रीतिकालीन काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ - भाग - 2

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 रीतिकालीन रीतिमुक्त काव्यधारा

13.3 रीतिमुक्त काव्यधारा के प्रमुख कवि

- 13.3.1 घनानन्द
- 13.3.2 आलम
- 13.3.3 ठाकुर
- 13.3.4 बोधा
- 13.3.5 द्विजदेव

13.4 रीतिमुक्त काव्य की प्रमुख विशेषताएँ

- 13.4.1 रीतिस्वच्छंदता
- 13.4.2 प्रेमानुभूति की प्रधानता
- 13.4.3 विरहप्रधान अनुभूति
- 13.4.4 भावप्रवणता
- 13.4.5 काव्यादर्श अथवा काव्यदृष्टि
- 13.4.6 अभिव्यंजना सौष्ठव

13.5 रीतिकालीन काव्य की अन्य प्रमुख प्रवृत्तियाँ

- 13.5.1 भक्तिकाव्य
- 13.5.2 नीतिकाव्य
- 13.5.3 वीरकाव्य एवं प्रशस्तिकाव्य
- 13.5.4 अन्य स्फुट काव्य प्रवृत्तियाँ

13.6 सारांश

13.7 उपयोगी पुस्तकें

13.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

13.0 उद्देश्य

रीतिकाल में काव्य की तीन प्रमुख काव्यधाराएँ प्रवाहित थीं – रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध तथा रीतिमुक्त काव्यधारा। प्रथम दो काव्यधाराओं के स्वरूप, प्रमुख कवि तथा काव्य की प्रवृत्तियों-विशेषताओं का विवेचन आप इकाई संख्या बारह में कर चुके हैं। तीसरी काव्यधारा 'रीतिमुक्त काव्य' की है तथा इन तीनों के अतिरिक्त लिखे गए रीतिइतर

काव्य का भी अपना एक विशिष्ट महत्व है। इस इकाई में इन्हीं दोनों विषयों पर चर्चा की जा रही है। इस इकाई के अध्ययन-विश्लेषण से आपः

- रीतिमुक्त काव्यधारा के स्वरूप को समझा सकेंगे;
- रीतिमुक्त काव्यधारा के प्रमुख कवियों के विषय में विस्तृत विवेचन कर सकेंगे;
- रीतिमुक्त काव्यधारा की प्रमुख विशेषताओं का विवेचन कर सकेंगे;
- रीतिकालीन अन्य (रीतिइतर) काव्य प्रवृत्तियों का विश्लेषण कर सकेंगे;
- रीतिकालीन भक्तिकाव्य की चारों काव्यधाराओं का विवेचन कर सकेंगे;
- रीतिकालीन नीति, वीर, प्रशस्ति एवं अन्य स्फुट प्रवृत्तियों को बता सकेंगे; तथा
- रीतिकालीन-प्रदेय की व्याख्या कर सकेंगे।

13.1 प्रस्तावना

रीतिकालीन काव्य संबंधी इस खंड की यह अंतिम इकाई है। इससे पूर्व आप रीतिकालीन काव्य के प्रेरणास्रोत, परिस्थितियों तथा तद्‌युगीन परिवेश का अध्ययन कर चुके हैं। परिस्थितियों ने इस युग की काव्यधाराओं को कैसे प्रभावित किया यह भी जान चुके हैं। वर्गीकरण के अंतर्गत आपने यह भी जाना है कि 'रीति' से मुक्त रहकर अर्थात् पूर्णतः स्वच्छंद रूप में काव्य सृजन करने वाले कवियों को रीतिमुक्त कवि कहा गया। इनके द्वारा विरचित काव्यधारा को रीतिमुक्त काव्यधारा के नाम से जाना जाता है। एक अन्य काव्यधारा भी जिसे रीति से इतर या भिन्न काव्यधारा के नाम से देखा-समझा जाता है और इसके अंतर्गत भक्तिकाल से चली आ रही विभिन्न इतर प्रवृत्तियों की परम्परा भी दृष्टिगत होती है। इन रीतिमुक्त कवियों तथा रीतिइतर साहित्य-सर्जकों के काव्य की प्रमुख विशेषताओं एवं उनके प्रदेय का विश्लेषण करना ही इस इकाई में हमारा लक्ष्य है। इससे पहले की इकाई, इकाई संख्या 12 में आपने जिन दो प्रमुख रीतिकालीन काव्यधाराओं का अध्ययन किया वे हैं- रीतिबद्ध काव्य तथा रीतिसिद्ध काव्य।

अतः यहाँ रीतिकालीन, रीतिमुक्त तथा रीतिइतर काव्य की प्रवृत्तियों को जानने के लिए यह स्पष्ट होना चाहिए कि रीतिमुक्त कवि वे थे जो अपनी अनुभूति को, अपनी प्रेम वेदना को तथा अपनी विरह-व्यंजना को काव्य में अश्रुओं सा तरल एवं सहज बनाकर ढाल रहे थे। रीतिमुक्त कवियों ने रीति के सारे मानदंड ठुकराकर, दरबारों का बहिष्कार करते हुए निजी प्रेम की मर्मस्पर्शी पीड़ा को गीतों में पिरोया। ये कवि अपनी स्वच्छंद एवं उन्मुक्त चेतना के कवि थे जिन्हें उनकी प्रियतमाओं का वियोग उपहार स्वरूप मिला था। श्रृंगार तथा भक्ति के सौंदर्ययुक्त पदों का सृजन करने वाले इन प्रेम चितेरों ने संयोग पक्ष का सर्वथा बहिष्कार किया। संयोग कहीं आया भी तो स्मृति बनकर। इनका विरह भी रीति-परक श्रृंगार के समान नारी का ऊहात्मक विरह नहीं, यहाँ तो पुरुष का विरह वर्णित है और वह भी पूरी ईमानदारी से। स्वच्छंद काव्य के ये कवि विरह के अतिरेक में फ़ारसी तथा सूफ़ी काव्य के उस साधक की तरह हो जाते हैं जो प्रियतमा में ही साक्षात ब्रह्म या परमपुरूष की कल्पना करने लगते हैं। यहाँ तो ये स्वयं को ही प्रेयसी रूप नारी समझकर पुरुषरूप प्रिया के प्रति विरह भाव की अभिव्यक्ति करने लगते हैं।

रीतिमुक्त काव्य में प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है जो कि प्रेमी कवि के अपनी प्रिया के प्रति अनेक प्रकार के उपालंभों से अभिव्यक्त होती है। ये उपालंभ, प्रेयसी के प्रेम की सच्चाई, अनन्यता, निष्ठा तथा औत्कट्य-उदात्तता का ही बखान करते रहते हैं। घनानन्द आदि रीतिमुक्त कवियों ने अपनी प्रिया के हृदय में अपने प्रति करुणा जागृत करने के उद्देश्य से ही अपनी व्यथा, पीड़ा, वेदना, घुटन अवसाद तथा विछोह को अत्यंत मार्मिक एवं हृदयस्पर्शी शैली में चित्रित किया है। इनका अनुराग अत्यंत सात्विक अनुराग है और ये विछोह-वेदना तथा प्रिया द्वारा दिए गए अतीव कष्टों को सहकर भी उसी के कल्याण की कामना करने वाले कवि हैं। अतः कहा जा सकता है कि रीतिमुक्त कवि, ऐंद्रिय भोग से दूर तथा दरबारी-संकृति से विलग, सच्चे प्रेम का गायन करने वाले थे।

इसी प्रकार कुछ विद्वान भक्ति, दर्शन, प्रकृति, राजप्रशस्ति, वीर तथा ज्योतिष आदि विषयों से संबद्ध काव्य सृजन करने वालों को भी रीतिमुक्त काव्यधारा के अंतर्गत ही गिनते हैं। इसी युग में रीति पद्धति से मुक्त रह कर काव्य-कर्म करने वाले बहुत से ऐसे कवि भी थे जिन्होंने अपनी कविता का वर्ण्य-विषय रीतिमुक्त या रीतिस्वच्छंद कवियों से भिन्न तथा प्रेम के स्थान पर भक्ति, प्रकृति, प्रशस्ति नीति या अन्य किसी को बनाया। इस इकाई के उत्तरार्द्ध में इन्हीं सब विषयों की विस्तृत चर्चा की गई है। तो आइए, सर्वप्रथम रीतिमुक्त काव्यधारा अर्थात् घनानंद आदि स्वच्छंद कवियों के विषय में अध्ययन करते हुए उनके काव्य का विश्लेषण करें।

13.2 रीतिकालीन रीतिमुक्त काव्यधारा

बंधन या परिपाटियों से मुक्त रहकर रीति काव्यधारा के प्रवाह-विरुद्ध अपनी एक अलग तथा विशिष्ट पहचान बनाने वाली काव्यधारा को रीतिमुक्त काव्य के नाम से जाना जाता है। पिछली दो इकाइयों में हम यह जान चुके हैं कि संस्कृत काव्यशास्त्र के आचार्यों ने काव्यसौष्ठव के विवेचन हेतु जो सिद्धांत या लक्षण निश्चित किए थे उनके आधार पर लक्षणों सहित या लक्षणरहित जो काव्य रचा जाता रहा उसे रीतिकाव्य कहा गया। रीतिबद्ध काव्य, शास्त्रीय-काव्य कहलाया जिसके लेखक 'कवि' और आचार्य कहलाए। पर रीतिसिद्ध-परंपरा के कवि केवल वही थे जो लक्षण न देकर अलंकार, रस, ध्वनि, नायिकाभेद, रीति, वक्रोक्ति, नख-शिख या बारहमासा आदि पर केवल काव्य (लक्षणों के अनुरूप) प्रस्तुत कर रहे थे।

रीतिमुक्त काव्यधारा के कवि न तो रीतिबद्ध थे और न ही रीतिकवि या रीतिसिद्ध कवि। इस धारा के कवि तो वे विशिष्ट कवि थे जो युगीन परिस्थितियों के विरुद्ध तथा परंपरा से हट कर प्रेम-प्रवृत्ति पर अधिक बल दे रहे थे। वास्तव में ये कवि स्वच्छंद प्रवृत्ति के और उन्मुक्त चेतना के कवि थे। निजी प्रेम तथा आत्मानुभूत वेदना का गायन करने वाले स्वतंत्र-चेता सदैव ही परंपराओं का मुख-मर्दन कर अपनी एक नई राह बनाते हैं। इसी कारण इन कवियों के मन में भी परंपरा-विद्रोह उभरा। परिणाम यह हुआ कि इन कवियों की निडरता और स्वच्छंदता ने रीतिबद्ध या रीतिकवियों के व्यक्तित्व तथा कृतित्व को भी आड़े हाथों लिया। उन्होंने उस कविता परिपाटी, रीति-परंपरा तथा उनकी दृष्टि को भी अनुपयुक्त कहकर ललकारा। उन्होंने रीतिबद्ध या रीतिसिद्ध कवियों को आश्रय देने वालों को भी अपनी तीखी अभिव्यंजना का शिकार बनाया। 'आपको न चाहे ताके बाप को न चाहिये' कहने वाले इन कवियों ने दरबारी आश्रय को ठोकर मार दी। ठाकुर कवि ने स्पष्टतः कहा कि रीतिबद्ध रीतिसिद्ध काव्य न तो काव्य है और न ही उसके कवि, कवि हैं। इसीलिए वे कहते भी हैं-

सीख लीन्हों मीन मृग खंजन कमल नैन,
सीख लीन्हों यश और प्रताप को कहानो है।

सीख लीन्हों कल्पवृक्ष कामधेनु चिंतामणि
सीख लीन्हों मेर और कुबेर गिर आनो है।।

ठाकुर कहत याकी बड़ी है कठिन बात,
याको नहीं भूलि कहूँ बाँधिमत बानो है।।

डेल सो बनाय आय मेलत सभा के बीच,
लोगन कवित्त कीबो खेल करि जानो है।।

कविता करना कोई खेल नहीं है। इन कवियों ने तो दो-चार-छह उपमान और कतिपय शब्द रचकर कविता करने का फैशन सा ही बना लिया है। इसीलिए रीतिमुक्त कवि कहते हैं कि हम कविता नहीं बनाते बल्कि हमारी कविता हमें बनाती (गढ़ती) है। रीतिमुक्त कवि संस्कृत की शास्त्रीय परंपरा में बँधकर लिखना भी नहीं चाहते थे। ये किसी भी रीति पर चलकर या परिपाटी का पालन कर काव्यसृजन करने को कविप्रतिभा के बंधन की तरह मानते थे। इसी कविप्रतिभा को बाँधने के विरुद्ध इन्होंने विद्रोह भाव की अभिव्यक्ति की। इनकी इसी विद्रोही प्रतिक्रिया ने उनकी अभिव्यंजना शैली को मुखर एवं प्रखर भी किया। परिणामतः यह काव्यधारा कम कवियों से पोषित होकर भी इतनी महत्वपूर्ण बन गई कि इसे उपेक्षित नहीं किया जा सका। इस काव्यधारा के पाँच प्रमुख कवि हैं – घनानन्द (प्रवर्तक), आलम, ठाकुर, बोधा तथा द्विजदेव।

यूरोप में क्लासिकल या शास्त्रीय परंपरा के विरोध में जिस प्रकार की विद्रोह भावना पनपी थी और परिणामतः स्वच्छंदतावादी काव्य प्रकट हुआ था, ठीक उसी प्रकार इस रीतिमुक्त काव्यधारा में भी हुआ। इन कवियों ने भी एक ओर शास्त्रीय काव्य परंपराओं से विद्रोह किया तो दूसरी ओर सामाजिक मर्यादाओं, पारंपरिक रूढ़ियों तथा धर्मगत सीमाओं की भी परवाह नहीं की। इन्होंने निडर प्रेम-योद्धाओं की तरह स्वच्छंद प्रेम का मार्ग ग्रहण किया तथा प्रेम और श्रृंगार की मर्मस्पर्शी रचनाएँ प्रस्तुत कर काव्य प्रेमियों तथा मर्मज्ञ पाठकों को सराबोर कर दिया।

रीतिमुक्त काव्य, रीतिबद्ध या रीतिसिद्ध काव्य की तरह आत्मप्रदर्शनपरक, वस्तु-प्रधान अथवा चमत्कार-प्रधान न होकर आत्माभिव्यक्तिपरक एवं व्यक्ति-प्रधान काव्य कहा जा सकता है। यही कारण है कि इसमें प्रगीतिकाव्य का सा रागतत्व एवं संगीतमयी आत्मा बसी हुई अनुभूत होती है। इसमें न तो नायिकाओं के भेद-उपभेद किए गए हैं और न ही उनके नख से शिख तक के स्थूल, मांसल तथा कामोद्दीपक चित्र उकेरे गए हैं। इसमें तो निजी प्रेम के विरहाकुल अश्रुओं की आर्द्र धारा अविरल गति से प्रवाहित होती है। इनकी नायिकाएँ रीतिकवियों की तरह कल्पनालोक में खोई रहने वाली अथवा श्वास लेने पर छह-सात हाथ आगे-पीछे हो जाने वाली विरह-त्रसिता नायिकाएँ नहीं। इसमें स्त्री-पुरुष का बनावटी आकर्षण या दिखावटी प्रेम नहीं, यह तो भक्तिकाव्य की आत्मात्मिकता तथा निर्गुण कवियों की साधनात्मकता से संपृक्त प्रेम की सच्ची तथा मार्मिक अभिव्यक्ति का दस्तावेज़ है। पूर्णतः भक्त कवियों का

सा औदात्य तथा दार्शनिक गांभीर्य इसमें भले ही न हो और यह अपेक्षित भी नहीं परंतु रीतिकवियों की ऐंद्रियिता, ऊहात्मकता तथा मांसलता से यह प्रेम बहुत ऊपर है।

घनानन्द, आलम, बोधा, ठाकुर एवं द्विजदेव आदि सभी स्वच्छंद कवि अपने प्रेम पात्र के हृदय में करुणा उत्पन्न करने का प्रयास करते दिखाई पड़ते हैं। निर्मल एवं उदात्त प्रेम के इन उपासकों ने प्रेम के प्रतिदान की अभिलाषा न रखते हुए अपने समर्पण, एकनिष्ठता तथा अनन्यता पर ही स्वयं को केंद्रित रखा। ये अतृप्त वासना अथवा रूपवैविध्य के आस्वाद में डूबने वाले रसिक नहीं, ये तो हृदय के हाथों बिके हुए तथा प्रेम-परवश समस्त मर्यादाओं को तोड़ने का साहस रखने वाले निडर प्रेमी मात्र हैं। जो इन्होंने सच्चे हृदय से अनुभूत किया उसे ही शब्दाश्रुओं में ढालने का सच्चा प्रयास भी किया। डॉ. महेन्द्र कुमार ने लिखा भी है – ''रीतिमुक्त काव्य के अंतर्गत प्रेम का अर्थ मन का उत्कट उन्मुखीभाव है जिसकी अभिव्यक्ति करने के लिए प्रेमी समस्त मर्यादाओं का उल्लंघन कर डालता है। रीतिकाव्य के समान मर्यादाभीत विलासी के इंद्रियसुख की आतुर अभिलाषा नहीं जिसे वह बहुत बड़ा मूल्य देकर क्रय करना तो चाहता है पर अपनी नैतिक प्रतिष्ठा पर आँच न आने देने के उद्देश्य से समाज की दृष्टि से ओझल भी रहना चाहता है।''

'रीतिकाल' नाम पर सबसे बड़ी आपत्ति का कारण भी रीतिमुक्त काव्यधारा ही है। रीति काव्य जिस तरह नारी-विरह का काव्य था, रीतिमुक्त काव्य उसी प्रकार पुरुष-विरह का काव्य है। परंतु पुरुष-विरह की उदात्तता और गंभीरता के सामने रीतिकाव्य की नारी का ऊहात्मक विरह कहीं नहीं ठहरता। स्थूल चेष्टाओं या विविध काम दशाओं से दूर प्रेमवृक्ष के नीचे बैठकर प्रेमिका के वियोग का दर्दीला बखान और प्रेम-निवेदन का निरंतर सहानुभूति जगाने वाला प्रयास इसी कविता में देखने को मिलता है।

अभिव्यंजना की दृष्टि से भी इस काव्यधारा का अपना ही वैशिष्ट्य है। हालाँकि, भाषा इन कवियों की भी रीतिकाव्य के अन्य कवियों की तरह परिनिष्ठित ब्रजभाषा ही रही और युग-प्रचलित कवित्त, सवैया, दोहा तथा चौपाई जैसे मुक्त छंदों का प्रयोग ही इन कवियों ने भी किया। किंतु फिर भी इनका प्रतिभा-कौशल अपनी एक अलग ही झलक छोड़ता है। इन कवियों की रागात्मक बिंब-योजना, अद्भुत उक्ति-वैचित्र्य, शब्द प्रयोग का जड़ियापन, धारदार, मर्मस्पर्शी, पैनी एवं प्रभावी बिंब रेखाएँ तथा वस्तु-वैभव की समृद्धि सब के सब गुण मिलकर इन कवियों को तथा इस काव्यधारा को वैशिष्ट्य प्रदान करते हैं। कवि अनुभूति की नितांत वैयक्तिकता की सफल अभिव्यक्ति इस काव्य के मुहावरों में तथा अप्रस्तुत विधान की सहज प्रस्तुति में देखी जा सकती है। यही सब विशेषताएँ रीतिमुक्त काव्यधारा को केवल रीतिकाल में ही नहीं समग्र हिंदी साहित्याकाश में एक पृथक तथा विशिष्ट स्थान एवं पहचान का अधिकारी बना देती हैं।

अब हम इस काव्यधारा के प्रसिद्ध कवियों तथा उनकी रचनाओं के विषय में भी थोड़ा विश्लेषण कर लें तो उचित होगा। इन कवियों के संदर्भ में जानकारी हासिल कर लेने पर इस काव्यधारा की प्रमुख विशेषताओं पर दृष्टि डाल सकेंगे।

बोध प्रश्न

1) रीतिकालीन रीतिमुक्त काव्यधारा का परिचयात्मक विवरण लगभग पंद्रह पंक्तियों में दीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2) नीचे कुछ कथन दिए जा रहे हैं, इनमें कुछ सही तथा कुछ गलत हैं। उपयुक्त चिह्न लगाकर स्पष्ट कीजिएः

i) रीतिमुक्त काव्यधारा के प्रवर्तक कवि बोधा हैं। ( )

ii) रीतिमुक्त काव्यधारा के कवियों ने परंपरा और परिपाटी का विरोध ही नहीं उल्लंघन भी किया। ( )

iii) रीतिमुक्त कवियों ने संस्कृत की काव्यशास्त्रीय परंपरा का यथास्थान अनुसरण किया। ( )

iv) रीतिमुक्त कवियों ने रीतिबद्ध कवियों के काव्य को काव्य नहीं माना। ( )

v) रीतिमुक्त काव्य में ऐंद्रियता एवं मांसलता की अपेक्षा निजी प्रेम की अभिव्यक्ति है। ( )

13.3 रीतिमुक्त काव्यधारा के प्रमुख कवि

रीतिमुक्त काव्यधाराओं को दृष्टि में रखते हुए इसे भी दो वर्गों में बाँटा जा सकता है। ऐसा विभाजन करने से रीतिकाल की अन्य प्रवृत्तियाँ अर्थात् वीर, भक्ति, नीति, दर्शन, प्रशस्ति तथा प्रकृति आदि प्रवृत्तियाँ भी इसी के अंतर्गत आ जाती हैं। अतः इस दृष्टि से प्रथम वर्ग तो होगा - शृंगार काव्यधारा या स्वच्छंद काव्यधारा का, जिसके अंतर्गत घनानन्द, आलम, ठाकुर, बोधा एवं द्विजदेव जैसे स्वच्छंद प्रेममार्गी कवि आ जाएँगे। दूसरा वर्ग होगा शृंगारेतर रीतिमुक्त काव्यधाराओं का, जिसके अंतर्गत निर्गुण काव्य की संत एवं सूफ़ी काव्यधारा तथा सगुण काव्य की राम एवं कृष्ण काव्यधाराएँ तो आएँगी ही साथ ही वीर, नीति, प्रशस्ति एवं प्रकृति काव्यधाराएँ भी आ जाएँगी।

यहाँ हम प्रथम वर्ग अर्थात् प्रेममार्गी स्वच्छंद काव्यधारा के पाँच प्रमुख कवियों एवं उनकी कृतियों का परिचय प्राप्त करेंगे। दूसरे वर्ग की चर्चा आगे की जा सकेगी। तो आइए, पहले पाँचों कवियों एवं उनके साहित्य का विश्लेषण कर लें।

13.3.1 घनानन्द

घनानन्द का नाम रीतिमुक्त या रीति स्वच्छंद कवियों में सर्वोपरि है। रीति की प्रवाहमान धारा के विरुद्ध खड़े रह कर एक नव्यतम काव्यधारा का प्रवर्तन करने का श्रेय घनानन्द को ही जाता है। ब्रजभाषा कविता को परंपराओं के बंधन से मुक्त कराकर एक नई दिशा देने में पहल करने वाले ये प्रमुख कवि हैं। आचार्य शुक्ल के अनुसार इनका जन्म संवत् 1746 के आसपास माना जाता है। उत्तर प्रदेश के ब्रजभाषी कस्बे में जन्मे घनानन्द दिल्ली के मुगल बादशाह मुहम्मदशाह रंगीला के दरबार में मीरमुंशी थे। यहीं इनका अनुराग एक सुजान नामक वेश्या से हो गया। बताया जाता है कि दरबारियों के षडयंत्र के कारण घनानन्द को दरबार से निकाला गया था। बादशाह के कहने पर पद न गाने और सुजान के कहने पर गा देने वाले इस प्रेमी कवि को बादशाह के क्रोध का भागी बनना पड़ा और दरबार-निकाला हासिल हुआ। ऐसे में घनानन्द ने सुजान से अपने साथ चलने को कहा पर उसने इंकार कर दिया। परिणामतः उन्हें गहरा आघात लगा और वे वृन्दावन आकर निम्बार्क संप्रदाय में दीक्षित हो गए। कृष्णभक्ति में लीन होकर भी घनानन्द सुजान के प्रति अपने अनुराग को कम न कर सके और इसीलिए वे राधा-कृष्ण में भी उसी की छाया देखते रहे। संवत् 1796 के अहमदशाह-अब्दाली द्वारा किए गए आक्रमण में जो कत्लेआम हुआ, उसमें घनानन्द मारे गए।

लौकिक प्रेम से अलौकिकता तक पहुँचने वाले रसिक कवि घनानन्द अपनी प्रेमिका सुजान को अंतिम समय तक भी भुला न पाए। घनानन्द ने संयोग तथा वियोग शृंगार की अत्यंत मार्मिक एवं प्रभावी कविता लिखी है। संयोग की अधिकांश कविता दरबारी-निर्वासन से पहले की है तथा वियोग की कविता दरबारी-निर्वासन के बाद की। संयोग की दशा में भी वियोग की अनुभूति में जीने वाला यह अद्भुत कवि विषय-प्रेम का महान कवि था।

घनानन्द द्वारा रचित काव्य को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है। एक वर्ग में उनकी कवित्त-सवैयों में लिखी शृंगारविषयक रचनाओं को रखा जा सकता है तथा दूसरे वर्ग में पदों और दोहे-चौपाइयों में लिखी गई भक्तिपरक रचनाओं को रख सकते हैं। शृंगारिक रचनाएँ केवल मुक्तक हैं तथा भक्तिपरक रचनाएँ प्रबंध और मुक्तक दोनों। यों घनानन्द के सुजान-हित, कृपानन्द निबंध, वियोग बेलि, इश्कलता, यमुनायश, प्रीतिपावस, प्रेम पत्रिका,

प्रेमसरोवर, ब्रजविलास, सरसवसंत, अनुभवचंद्रिका, रंग बधाई, प्रेम पद्धति, वृषभानुपुरसुषमा, गोकुलगीत, नाममाधुरी, गिरिपूजन, विचारसार, दानघटा, भावनाप्रकाश, कृष्णाकौमुदी, प्रियाप्रसाद, प्रेम पहेली, कवित्त संग्रह, पदावली, ब्रजव्यवहार तथा मनोरथमंजरी, आदि 40 ग्रंथ उपलब्ध होते हैं तथा अनेक स्फुट छंद भी यत्र-तत्र मिलते हैं। प्रेम-शृंगार के अद्‌भुत कवित्त रचने वाला यह कवि आत्मसुखाय काव्य-सृजन कर रहा था। किंतु महत्वपूर्ण है कवियों के सृजन से कवि घनानन्द का स्वयं गढ़ते जाना-निखरते जाना। तभी वे कहते हैं -

लोग हैं लागि कवित्त बनावत,
मोहिं तो मेरे कवित्त बनावत।

अर्थात् घनानन्द कवित्त की पहचान न थे। कवित्त घनानन्द की पहचान बन रहे थे। तभी तो आचार्य शुक्ल ने भी कहा "ये वियोग शृंगार के प्रधान मुक्तक कवि हैं। प्रेम की पीर लेकर इनकी वाणी का प्रादुर्भाव हुआ। प्रेम-मार्ग का ऐसा प्रवीण और धीर पथिक तथा जबांदानी का ऐसा दावा रखने वाला ब्रजभाषा का दूसरा कवि नहीं हुआ।"

नारी प्रेम, सौंदर्य, प्रेमानुभूति तथा व्यापक विरह-वेदना का यह एकनिष्ठ तथा अंतर्मुखी कवि सूक्ष्म से सूक्ष्म भाव को भी सफलता से रूपायित करता है। इनके काव्य में सुजान की छाप भी जगह-जगह मिलती है। यों सुजान कृष्ण को भी कहा जाता है, परंतु मूलतः यह प्रेयसी सुजान है। पर इसे कवि प्रेम का उदात्तीकरण भी कहा जा सकता है कि उसकी प्रेयसी सुजान उसे कृष्ण-राधा की भूमि तक पहुँचा देती है। सरल, सहज तथा सीधे प्रेम मार्ग पर चलने वाला यह महाकवि सयानेपन तथा बाँकपन से कोसों दूर रहा है। एकनिष्ठता उसका आदर्श रही है। तभी तो वे कहते भी हैं -

अति सूधो सनेह कौ मारग है, जहाँ नैकु सयानप बाँक नहीं।
तहँ साँचै चलैं तजि आपुनपौ, झिझकें कपटी यो निसांक नहीं।
घन आनन्द प्यारे सुजान सुनो, इहाँ एक ते दूसरों आँक नहीं।
तुम कौन-धौं पाटी पढ़े हो लला, मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं।।

मनभर ले लेने पर भी छटाँक भर न लौटाने वाली प्रियतमा कितनी निष्ठुर है। कपट, अविश्वास और विश्वासघात का विरोधी यह सब सहता भी है और आत्म-त्याग से साधनारत भी रहता है। प्रेम मार्ग तो तलवार की धार के समान है और प्रेमी उस पर चल कर ही मंजिल पर पहुँचता है। घनानन्द भी एक बार चलकर पीछे मुड़ने वाले व्यक्ति नहीं। जीवन की हर चुनौती से वे जूझते हैं। डॉ. महेंद्र कुमार लिखते हैं - "अतः असह्य विरह-व्यथा को नियति मानकर अवसाद और घुटन के बीच मरण-तुल्य जीवन व्यतीत करने का स्वभाव बना लेने के अतिरिक्त उसके पास और कोई विकल्प नहीं। उनके विचार में प्रिय से प्रतिदान प्राप्त करने का अधिकार न होने के कारण उसको कोसने अथवा उसकी भर्त्सना करने का उसे (प्रेमी को) अधिकार नहीं हो सकता, हाँ संदेश-प्रेषण द्वारा वह अपने अनुराग की सच्चाई और व्यथा की गहराई की अभिव्यक्ति करके उसके मन में अपने प्रति सहानुभूति और करुणा जगाने का प्रयत्न अवश्य कर सकता है, ऐसा करने से प्रिय के कृपा-कटाक्ष का एक अंश भी यदि उसे प्राप्त हो जाता है तो उसका प्रेम और प्रेमी-जीवन दोनों ही धन्य हो सकते हैं।"

अतः स्पष्ट है कि घनानन्द का भावपक्ष जितना मार्मिक उदात्त, पुष्ट प्रभावी है, उनका कला पक्ष भी उतना ही उन्नत एवं समृद्ध है। काव्य गुण, छंद, अलंकार और भाषा आदि सभी दृष्टियों से उनका कला-पक्ष प्रौढ़ता के चरमरूप प्रस्तुत करता है। भाषा के सौष्ठव

को घनानन्द के काव्य ने विशेष रूप से सजाया सँवारा है। तभी आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा भी है- ''अपनी भावनाओं के अनूठे रूप-रंग की व्यंजना के लिए भाषा का ऐसा बेधड़क प्रयोग करने वाला पुराने कवियों में दूसरा नहीं हुआ''। घनानन्द की बिंब योजना तथा उक्ति-वैचित्र्य की अद्भुत छवि देखते ही बनती है। हृदयगत पीड़ा एवं कसक को उभारने में, अलंकारों की बुनावट तथा नक्काशी में और प्रभावी रंग-वैभव की छटा बिखेरने में घनानंद का कोई सानी नहीं। उनके अभिव्यंजना शिल्प में बोलचाल की ठेठ शब्दावली, मुहावरे और लोकोक्तियों का सौंदर्य इनकी भाषिक-छटा को निखारता सँवारता है। हृदय और बुद्धि-व्यापार का ऐसा कौशल अन्यत्र दुर्लभ ही है।

13.3.2 आलम

आलम स्वच्छंद धारा के दूसरे प्रमुख कवि हैं। अकबरकालीन आलम, शेख नाम की एक रंगरेजिन से प्रेम करते थे और इस घटना प्रसंग से इनको प्रसिद्धि भी बहुत मिली है। कुछ विद्वान दो अलग-अलग आलम कवियों की कल्पना भी करते हैं परंतु अंततः कोई प्रामाणिक तथ्य न मिलने पर यही समझा जाता है कि 'माधवानलकामकंदला' तथा 'आलमकेलि' के रचयिता आलम अकबरकालीन कवि ही हैं और ये एक ही हैं। दूसरे आलम का अस्तित्व नहीं है।

कहा जाता है कि आलम मूलतः ब्राह्मण थे किंतु रंगरेजिन शेख के अनुरागवश मुसलमान हो गए। शेख से इनके प्रेम की कथा का आधार उसकी काव्य-प्रतिभा मानी जाती है। किंवदंती है कि एक बार आलम ने शेख को अपनी पगड़ी रंगने को दी थी और उस पगड़ी में एक कागज़ का टुकड़ा बँधा था, जिस पर आलम कवि का अधूरा काव्य-छंद था-

कनक छरी सी कामिनी, काहे को कटि छीन।

दोहे की इस अधूरी पंक्ति को आलम ने बाद में पूरा करने की आशा से संभवतः पगड़ी में बाँधा होगा। शेख ने पगड़ी रंगते समय-कागज़ देखा और दोहा पूरा कर उसी में बाँध दिया-

कटि को कंचन काटि विधि, कुचन मध्य धरि दीन।।

आलम ने इस दोहे की पूर्ति को देखा तो वे सीधे शेख के घर पहुँचे और उन्हें पुरस्कृत किया। यहीं से इन दोनों का प्रेम आरंभ हुआ।

आलम के नाम से चार ग्रंथ उपलब्ध होते हैं — माधवानलकामकंदला, श्यामसनेही, सुदामाचरित तथा आलमकेलि। इनमें पहले दो ग्रंथ प्रेमाख्यानक काव्यपरंपरा के ग्रंथ हैं तथा सुदामाचरित कृष्ण-भक्ति काव्य परंपरा का है। ये तीनों प्रबंधात्मक कृतियाँ हैं। आलमकेलि मुक्तक काव्य रचना है। कुछ अन्य स्फुट छंद भी आलम के नाम से मिलते हैं। कवि के स्वच्छंद भाव तथा प्रेमी वृत्ति को आलमकेलि में देखा जा सकता है। 'माधवान लकामकंदला' प्रेम कथा है तथा शेष दो भक्ति काव्य हैं। आचार्य शुक्ल ने आलम कवि के संदर्भ में लिखा है- ''ये प्रेमोन्मत्त कवि थे और अपनी तरंग के अनुसार रचना करते थे। इसी से इनकी रचनाओं में हृदयतत्व की प्रधानता है। प्रेम की पीर या इश्क का दर्द इनके एक-एक पद में भरा पाया जाता है।''

इनके काव्य में रागात्मकता के साथ-साथ काव्यशास्त्रीय वस्तुपरकता का पुट भी है। रीतिबद्ध कवियों के समान काव्यशास्त्रीय नियम इनके संस्कारों में ही थे। रूप, गुण, चेष्टा, हाव-भाव आदि का वर्णन इन्होंने पूरे मनोयोग से किया है। इनकी विरह प्रधान रचनाओं में विरह की तीखी कसक भी है। इनका काव्य काल संवत् 1640 से 1680 तक माना जाता है।

आलम के काव्य का अभिव्यंजना-शिल्प भी मँजा हुआ है। शब्द-वैचित्र्य तथा उत्प्रेक्षा अलंकार का विशिष्ट प्रयोग इनकी खासियत है। अनुप्रास की प्रवृत्ति भी इनके काव्य में सर्वत्र देखी जा सकती है। काव्य बिंबों की सुनियोजित रेखाएँ तथा अनुभूति की प्रगाढ़ता कवि के वैशिष्ट्य को उजागर करते हैं। इनकी भाषा में तत्सम शब्दों का आधिक्य तथा अरबी-फारसी की शब्दावली का प्रयोग अत्यंत सजगता से किया गया है। प्रसादगुण संपन्न पदावली तथा कवित्त सवैयों की प्रवाहमयी प्रस्तुति इनकी अद्भुत क्षमता की परिचायक है। इनका एक सुंदर एवं प्रसिद्ध छंद प्रस्तुत है-

जा थल कीन्हे बिहार अनेकन ता थल कांकरी बैठि चुन्यौ करै।
जा रसना सौं करी बहु बात सुता रसना सौं चरित्र गुन्यौ करैं।।
आलम चैन से कुंजन में करी केलि वहाँ अब सीस धुन्यौ करैं।
नैनन में जो सदा रहते तिनकी अब कान कहानी सुन्यौ करैं।।

13.3.3 ठाकुर

'ठाकुर-ठसक' और 'ठाकुर-शतक' नामक दो काव्य-संग्रह तैयार करने वाले कवि-ठाकुर रीतिकालीन रीतिमुक्त शृंगार की काव्यधारा के भावप्रधान कवि हैं। इनका पूरा नाम ठाकुरदास था। इनका जन्म 1366 ई. में ओरछा (मध्यप्रेदश) के अंतर्गत श्रीवास्तव खरे कायस्थ परिवार में माना जाता है। ये अकबर युग में आगरे की साठ हजार सेना के अफसर रहे। बुंदेलखंड के जैतपुर नरेश केसरीसिंह, उनके पुत्र पारीक्षतसिंह, बिजावर-नरेश केसरीसिंह तथा बाँदा नरेश गोसाँई अनूप गिरि 'हिम्मतबहादुर' आदि राजाओं के आश्रय में इनके रहने की सूचना भी मिलती है।

ठाकुर नाम के भी तीन कवि मिलते हैं। दो असनी वाले तथा एक बुंदेलखंड वाले। परंतु खोजबीन से यही निष्कर्ष निकाला जाता है कि रीतिमुक्त काव्यधारा के कवि ठाकुर बुंदेलखंड वाले ही हैं। मौजमस्ती तथा स्वाभिमान के धनी ठाकुर की जवाँमर्दी का पता वहाँ चलता है जब वे बाँदा-नरेश हिम्मतबहादुर के सामने सक्रोध तलवार खींचकर ये कवित्त पढ़ते हैं-

सेवक सिपाही हम उन राजपूतन के
दान जुद्ध जुरिबे यें नेकु जे न मुरके।।

रीतिस्वच्छंद काव्यधारा के सभी कवि इस साहस के धनी थे। ठाकुर ने अपने काव्य में राधा को आराध्य बनाया तथा शृंगार-वर्णन के लिए स्वच्छंद मार्ग का अनुसरण किया। कहीं-कहीं रीतिबद्ध शैली का प्रभाव भी इनके काव्य में विद्यमान है। पर अधिकांशतः फारसी प्रेमपद्धति का भारतीयकरण इनके काव्य में मिलता है। प्रेम करना आसान है पर उसे निभाना अत्यंत कठिन एवं दुष्कर कार्य है। इसीलिए ठाकुर के काव्य की गोपियाँ स्थिर प्रेमभाव की पक्षधर हैं। भक्ति और शृंगार का अद्भुत मिश्रण इनके काव्य में मिलता है। इनका मानना है कि ईश्वर पहले विरह में तड़पाता है और फिर सच्ची प्रीत देखकर मिलन की स्थिति बनाता है। ठाकुर विशुद्ध प्रेमी थे और प्रेम की एकनिष्ठता उनके जीवन का मूलाधार थी। आचार्य शुक्ल ने इसीलिए लिखा भी है - "ठाकुर बहुत ही सच्ची उमंग के कवि थे। उनमें कृत्रिमता का लेश नहीं। न तो कहीं व्यर्थ का शब्दाडंबर है, न कल्पना

की झूठी उड़ान और न अनुभूति के विरुद्ध भावों का उत्कर्ष। भावों को यह कवि स्वाभाविक भाषा में उतार देता है। बोलचाल की चलती भाषा में भावों को ज्यों का त्यों सामने रख देना इस कवि का लक्ष्य रहा है। ब्रजभाषा की श्रृंगार की कविता प्रायः सभी पात्रों के ही मुख की वाणी होती है। अतः स्थान-स्थान पर लोकोक्तियों का जो सुंदर विधान इस कवि ने किया है। उससे उक्तियों में और भी स्वाभाविकता आ गई है''।

ठाकुर की कविता अनुभूति और अभिव्यक्ति में बराबर सहज है। उनके व्यक्तिगत भाव भी सार्वजनिक बन जाते हैं। बोलचाल की स्वच्छ भाषा में प्रवाह है तथा निश्छल अनुभूति की स्वाभाविक अभिव्यक्ति उनकी परम विशेषता है। प्रेम के निर्वाह और एकनिष्ठता के प्रति वे पूर्णतः मुक्त रहे हैं। मांसलता से दूर नितांत रागात्मक अभिव्यक्ति में इनका मन बहुत रमा है। इनकी सौंदर्यानुभूति सहृदय की चेतना को आनंदमग्न करने वाली है। बिंब विधान में वक्र रेखाएँ तथा उनसे उभरी गंभीर अर्थ-चेतना का वैशिष्ट्य इनकी विशेषता है। भाषा, भावों के अनुरूप तथा सहज-सरल है।

13.3.4 बोधा

रीतिस्वच्छंद श्रृंगारी भावधारा के प्रमुख कवियों में बोधा का नाम भी महत्वपूर्ण है। इनका पूरा नाम बुद्धिसेन था। 'विरहवारीश' तथा 'इश्कनामा' नामक कृतियाँ बोधा विरचित मिलती हैं। विरहवारीश तो माधवानलकामकंदला की प्रसिद्ध प्रेमकथा पर आधारित प्रबंध रचना है तथा इश्कनामा प्रेम संबंधी मुक्तकों का संग्रह है।

बोधा अपने आश्रयदाता पन्नानरेश खेतिसिंह की राजनर्तकी सुभान से प्रेम करते थे। 'इश्कनामा' कवि के वैयक्तिक प्रेम का विरहानुभव बनकर सामने आती है। विरहवारीश में शाप, बाल, आरण्य, कामावती, उज्जैन, युद्ध, श्रृंगार, वनदेश तथा ज्ञान आदि खंडों में घटनाओं को विस्तार से प्रस्तुत किया गया है। बोधा के काव्य में मनोवेगों की बेबाक अभिव्यक्ति है। पन्नादरबारी की राजनर्तकी सुभान से प्रेम रखने के कारण इन्हें दरबार तथा नगर से निकाला गया था। उसी के विरह में इन्होंने विरहवारीश रचना लिखी थी। पर अंततः राजा ने ही इनके प्रेम की एकनिष्ठता देखकर सुभान के साथ रहने की अनुमति प्रदान की थी। इनके रचनाकाल की चर्चा सन् 1773 से 1803 तक की जाती है।

प्रेम को बोधा एक 'पंथ' मानते थे और इस पर चलने को तलवार की धार पर चलने के समान। परिवार एवं समाज की सभी मर्यादाओं की परवाह किए बिना और बड़े से बड़ा बलिदान दिए बिना इस पंथ पर चलना असंभव है। इसीलिए वे प्रेम का बखान भी केवल सहृदय के सम्मुख ही करना चाहते हैं क्योंकि वही इसका सुपात्र है। अन्य के सामने किए गए बखान को तो उपहास ही मिलता है। बोधा अन्य रीतिस्वच्छंद कवियों की तरह केवल त्याग और बलिदान में विश्वास नहीं रखते। ये तो प्रेम के प्रतिदान की अपेक्षा भी रखते हैं। अगर प्रेमिका दगा दे तो ये उसकी निन्दा तथा प्रताड़ना करना भी अनुचित नहीं मानते। इन सभी भावों और विचारों की निर्भीक अभिव्यक्ति इनके काव्य में देखने को मिलती है। बोधा के काव्य में ऐंद्रियता और उदात्तता का अद्भुत मिश्रण है। अनन्यता और बलिदान इन्हें प्रिय है लेकिन दगा देने वाली प्रेयसी के प्रति राग अलापते रहना स्वीकार्य नहीं।

बोधा के प्रेम विषयक काव्य की अभिव्यक्ति पूरे मनोयोग से की गई प्रस्तुति बनकर सामने आती है। संगत और औचित्य का वे पूरा ध्यान रखते हैं। उनकी बिंम्ब योजना

में ग्रामीण स्वभाविकता का पुट है। तत्सम और तद्भव शब्दावली के साथ उनकी भाषा में बुंदेली, अरबी, फारसी, पंजाबी, शब्दों के समूह भी मिलते हैं। लोकोक्ति और मुहावरों का तीखा एवं प्रवाहमान प्रयोग पाठकों को सहज ही आकृष्ट करता है। सूफ़ी-असूफ़ी प्रेमकाव्य की परंपराओं का अनुसरण तथा लोककथाओं का अधिग्रहण करते हुए बोधा ने दोहा, सवैया तथा कवित्त का सुंदर प्रयोग किया है। बोधा के काव्य का एक उदाहरण दृष्टव्य है-

अति छीन मृनाल के तारहु तें तिहि ऊपर पाँव दै आवनो है।
सुई बेह ते द्वार सकीन तहाँ परतीत को टाँडों लदावनों है।।
कवि बोधा अनी धनी नेजहु तें चढ़ि तापै न चित्त उगावनो है।
यह प्रेम को पंथ कराल महा तरवारि की धार पै धावनो है।

13.3.5 द्विजदेव

द्विजदेव रीतिमुक्त काव्यधारा के अंतिम प्रमुख कवि हैं। श्रृंगार प्रधान स्वच्छंद वृत्ति को इन्होंने भी काव्य का प्रमुख विषय बनाया। ये महाराजा मानसिंह 'द्विजदेव' के नाम से जाने जाते हैं। प्रकृति वर्णन की स्वच्छंदता, संयोग-श्रृंगार में भाव प्रधान रीतिबद्धता और वियोग श्रृंगार में रीतिस्वच्छंद रागात्मकता को इनके काव्य में सहज ही देखा जा सकता है। हृदय की विभिन्न अंतर्दशाओं का अत्यंत मार्मिक वर्णन करने में ये पूर्णतः दक्ष कवि माने जाते हैं। क्षोभ, दैन्य, धृति, स्मृति तथा उद्वेग आदि भावों की सफल व्यंजना इनके काव्य में देखी जा सकती है। प्रकृति का स्वच्छंद रूप में तो सुंदर वर्णन ये करते ही हैं, आलंबन रूप में भी उसका प्रभावशाली वर्णन इन्होंने किया है। प्रकृति वर्णन का एक उदाहरण दृष्टव्य है-

हौरें हौरें डोलती सुगंधसनी डारन तैं,
औरें औरें फूलन पैं दुगुन फबी है फाब।
चौंथत चकोरन सौं भूले भए भांरन सौं,
चारयों ओर चंपक पै चौगुनौं चढ़ौं है आब।
द्विजदेव की सौं दुति देखन भुलानौं चित,
दसगुनी दीपति सौं गहब गद्दे गुलाब।
सौगुने समीर है सह न गुने तीर भए,
लाखगुनी चाँदनी करोर गुनौं महताब।।

कहा जाता है कि द्विजदेव राजसी परिवार से थे और अयोध्या-नरेश शाकद्वीपी ब्राह्मण महाराज दर्शनसिंह इनके पिता थे। द्विजदेव इनका उपनाम माना जाता है। इनके जन्म-काल के संदर्भ में सन् 1802 तथा मृत्यु के लिए सन् 1831 स्वीकृत किए जाते हैं। द्विजदेव कृत - 'श्रृंगार लतिका', 'श्रृंगार बत्तीसी', 'श्रृंगार चालीसी' तथा 'रसकुसुमाकर' नामक चार कृतियों का उपलब्ध होना माना गया है। इनकी कृतियों एवं वर्ण्य-विषयों के संदर्भ में रीतिकाल के मर्मज्ञ विद्वान डॉ. महेन्द्र कुमार का कहना है- '' इनमें 'श्रृंगार लतिका' के अंतर्गत तीन सुमनों में क्रमशः काम-प्रेरणा और वसंत-आगमन, राधा-कृष्ण-क्रीड़ाएँ तथा नायिका का नख-शिख सौंदर्य चित्रित है। 'श्रृंगारबत्तीसी' में वर्षा ऋतु की प्राकृतिक छटा के बीच राधा-कृष्ण की लीलाओं का वर्णन है। 'श्रृंगारचालीसी', 'श्रृंगारबत्तीसी' का ही परिवर्द्धित संस्करण है। 'रसकुसुमाकर' के अंतर्गत गद्यपरक लक्षण तथा 'श्रृंगार

लतिक' के कतिपय छंद और अन्य कवियों की रचनाएँ उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत कर रस-सामग्री एवं रस के विभिन्न भेदों का स्वच्छ एवं सुबोध निरूपण किया गया है"।

द्विजदेव के श्रृंगारी छंदों में रूप, अनुभाव, संभोग तथा कामदशाओं आदि का भावातिरेकमय वर्णन उपलब्ध है। इसमें कहीं-कहीं रीतिबद्ध काव्य का प्रभाव भी दृष्टव्य है परंतु कवि की भावमयी प्रस्तुति का वैशिष्ट्य ही उसे रीतिमुक्त धारा से जोड़ता है। अनुभूति की गहराई तथा प्रस्तुति की मर्यादित गंभीरता को ध्यान में रखते हुए भी कहीं-कहीं घोर श्रृंगार का वर्णन किया गया है। नायिका की मनोव्यथा की प्रस्तुति तो अत्यंत मनोवैज्ञानिक दृष्टि से की गई है। प्रकृति मनोहारी रूप में चित्रित की गई है। सरल और निश्छल अभिव्यक्ति उनके नवीन उपमानों, साम्यमूलक अलंकारों तथा सूक्ष्म तरल बिंब रेखाओं में देखी जा सकती है। उनकी भाषा में रीतियुग के काव्य सौंदर्य और ब्रजभाषा के उत्कर्ष को देखा जा सकता है। लक्षणा, मुहावरे और लोकोक्तियों ने उनकी अभिव्यंजना शक्ति को प्राणवान बनाया है। कुल मिलाकर भाषा प्रांजल बन पड़ी है।

13.4 रीतिमुक्त काव्य की प्रमुख विशेषताएँ

रीतिमुक्त अथवा रीतिस्वच्छंद श्रृंगारधारा के पाँच प्रमुख कवियों के विषय में अभी आपने अध्ययन किया। इन सभी कवियों का श्रृंगार-काव्य रीतिबद्ध श्रृंगार काव्य से पर्याप्त भिन्न, स्वच्छंद एवं उदात्त भावना का पोषक काव्य कहा जा सकता है। इसमें प्रेम का अनुभूति पक्ष प्रधान रहा। इन कवियों की मूल प्रवृत्ति रूप सौंदर्य पर रीझने और सौंदर्य के मार्मिक संवेदनात्मक वर्णन करने की रही है। प्रेम में विरह पक्ष की महत्ता एवं विशिष्टता को इन सभी ने स्वीकृति दी है। निजी प्रेम की अनुभूति को वैयक्तिकता का स्वर देकर मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करना इनकी विशिष्टता रही है। अतः इन कवियों की प्रमुख विशेषताओं पर यहाँ संक्षेप में विचार करेंगे।

13.4.1 रीतिस्वच्छंदता

पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि इस धारा के कवि भावुक थे तथा उन्होंने अपने को किसी भी काव्यशास्त्रीय परंपरा से आबद्ध नहीं रखा। काव्यशास्त्र का उन्हें पर्याप्त ज्ञान था फिर भी उन्होंने अलंकार, छंद, नायक-नायिका भेद, रीति या वक्रोक्ति आदि सिद्धांतों की पद्धति विशेष का अनुकरण नहीं किया। उनका विश्वास अनुभूति की मौलिक प्रस्तुति में रहा। उन्होंने रीतिपरिपाटी से स्वयं को पूर्णतः मुक्त ही रखा। लक्षणों के फेर में न पड़कर ये कवि निजी प्रेम के उच्छ्वासों को ही काव्यबद्ध करते रहे और इसमें उन्हें पूरी सफलता भी मिली है। जबकि रीतिबद्ध कवि लक्षणों के फेर में उलझे रहे। रीतिसिद्ध कवि भी रीतिस्वच्छंद कवि नहीं कहे जा सकते। इसकी चर्चा हम पिछली इकाई में विस्तार से कर चुके हैं। अतः कह सकते हैं कि किसी भी तरह के बंधन को अस्वीकार करने वाले ये कवि पूर्णतः स्वच्छंद एवं उन्मुक्त भावों के कवि थे।

13.4.2 प्रेमानुभूति की प्रधानता

रीतिस्वच्छंद श्रृंगार काव्य का मूल प्रतिपाद्य ही प्रेम है। पर यह प्रेम रीतिबद्ध कवियों के नायक-नायिकाओं के प्रेम से भिन्न है। स्वतः अनुभूत प्रेम की अभिव्यक्ति करने वाले ये कवि हृदय के आंतरिक स्पंदनों से प्रतिक्षण अनुभूत किए गए प्रेम की छटपटाहट और कसक का मार्मिक एवं प्रामाणिक वर्णन करते हैं। इसी प्रेम में इन्हें मस्ती और आनंद की अनुभूति होती है और यही इन्हें लौकिकता से अलौकिकता की ओर उन्मुख भी करता है। प्रेम मार्ग के ये जवाँमर्द पथिक सूफ़ी प्रेम की पीर से भी प्रभावित होते हैं। यही कारण है कि इनके प्रेम में उदात्तता का स्पर्श भी है। यही प्रेम इनकी प्रेरणा बनकर इन्हें दिव्यता

तक ले जाता है। समर्पण और त्याग की विशेषताओं से संपन्न इनका प्रेम आध्यात्मिकता की ओर भी उन्मुख हो जाता है।

13.4.3 विरहप्रधान अनुभूति

रीतिस्वच्छंद कवियों का प्रेम वर्णन व्यथा प्रधान है। प्रेम के विछोह से प्राप्त पीड़ा और कसक इनकी अमूल्य निधि है। इसीलिए ये संयोग में भी वियोग की अनुभूति करते हैं। यही कारण है कि वियोग की प्रचलित परंपरा से यह विशिष्ट भी हो जाता है। यह फ़ारसी का प्रभाव भी है जहाँ पर प्रेम में विरह की प्रधानता रहती है। युगीन समाज के परिवेश एवं स्थितियों का प्रभाव भी इसमें लक्षित है। व्यथा को भीतर ही भीतर छुपा कर रखना इनकी विवशता भी थी। इसलिए ये कहते भी हैं कि प्रेम की पीर किसी को सुनाने से कुछ लाभ नहीं। फिर बिना विरह के ये प्रेम की परिपक्वता भी नहीं मानते। विरह वेदना से ही प्रेमी प्रेम पंथ का सच्चा पथिक बनता है। वही अग्नि में तपाकर उसे सच्चा सोना बनाता है। इसलिए ये वियोग की चिरंतन कामना भी करते हैं। इनका विरह रीतिबद्ध नायिका के अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णनों से पूर्णतः भिन्न एवं विशिष्ट है। इसी विशिष्ट प्रवृत्ति ने इनके काव्य को सहज एवं मार्मिक बनाया है।

13.4.4 भावप्रवणता

रीतिमुक्त काव्यधारा के शृंगार-प्रेमी कवि भावप्रवण कवि थे। प्रेम की पीड़ा को स्याही बनाकर अपने हृदय के उद्‌गारों को लिखना इनकी रुचि बन गई थी। भाव विभोर होकर ये ऐसे प्रवाहित होने लगते हैं कि अभिव्यंजना के सभी उपकरण स्वतः ही भावों को गति प्रदान करने के लिए उपस्थित होते चले जाते हैं। भावावेग वास्तव में इनकी कविता की प्रेरणा तो बनता ही है, साथ ही हेतु भी बन जाता है। उपमानों और बिंबों का मिश्रण इनकी अन्तर्दशाओं को इस रूप में रखता है कि सभी भावविभोर हो जाते हैं। विषम प्रेम के प्रति आसक्ति इन प्रेमियों के तन-मन में पूरे प्राणपण से मौजूद है।

13.4.5 काव्यादर्श अथवा काव्यदृष्टि

अपने काव्य गौरव के प्रति विशेष रूप से सजग रहने वाले इन कवियों ने समसामयिक रीतिबद्ध काव्यादर्शों से सजग रहते हुए अपनी काव्यदृष्टि को पृथक ही नहीं विशिष्ट भी रखा है। लीक या परंपरा से पूरी तरह हटकर स्वतः स्फूर्त कविता के पक्षधर इन कवियों ने सभी परंपराओं, मर्यादाओं तथा लीकों का तिरस्कार करते हुए एक नई राह बनाई। रीतिबद्ध काव्यधारा के प्रबल प्रवाह के विरुद्ध यात्रा करने का सफल कार्य इन लोगों ने किया। परंपराओं से प्राप्त अलंकारों या छंदों को जोड़कर छंद रचना करना इनकी दृष्टि में काव्य नहीं। इसलिए ये कवि शिक्षा को भी प्रतिभा से भिन्न वस्तु मानते हैं। काव्य तो स्वतः अनुभूत तथा निजी प्रेमानुभूतियों में ढलकर ही मार्मिक बनता है। अलंकारों या चमत्कारों से तो वह बोझिल ही होता है। अतः ये वे कवि थे जिन्होंने अपना काव्यमार्ग स्वयं बनाया। इनके भावों ने ही अभिव्यंजना विधान को अपने अनुकूल ढालकर कविता को भावलोक तक पहुँचाया।

13.4.6 अभिव्यंजना सौष्ठव

रीतिमुक्त कवियों का भावावेग अभिव्यंजना के सभी उपकरणों को अपने अनुकूल ढालकर सहज, स्वाभाविक एवं प्रभावी तो बनाता ही है साथ ही अलंकाराधिक्य तथा कृत्रिमता आदि दोषों से भी मुक्त रखता है। भाषा को अलंकारों, लाक्षणिक प्रयोगों तथा लयात्मक-विधानों से सुसज्जित कर ये कवि अभिव्यंजना-शिल्प के नवीन आयाम खोलते हैं। सहज स्वाभाविक तथा संतुलित शब्द प्रयोग, अपेक्षानुसार अप्रस्तुत विधान एवं चमत्कार पैदा

करती वाग्विदग्धता ही मार्मिक व्यंजनापूर्ण अभिव्यक्ति का कारण बनती है। लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग लोकजीवन से जोड़ता है तो उक्ति-वैचित्र्य कविता में कौतूहल पैदा करता है।

इन कवियों ने परखे हुए शब्दों का परिमार्जित प्रयोग किया। वह शब्द अपने आप में अद्वितीय प्रयोग बनकर आते हैं। समास वक्रता इसमें नहीं, पर अनायास आई मौज-मस्ती इसकी विशेषता है। मोहक शब्द, वक्रता और उसकी लोच, ध्वनिगत आभा तथा अर्थगत व्यंजना, सभी मिलकर भाषा को अद्भुत बना देते हैं। घनानन्द और द्विजदेव की भाषा तो इस दृष्टि से उदाहरण ही बन जाती है। इनकी मुहावरेदार भाषा और शब्दों की बारीक अभिव्यक्ति क्षमता वास्तव में अतुलनीय है। नाद, संगीत, लय एवं प्रवाह का इन्होंने विशेष ध्यान रखा है। इसी प्रकार उक्ति-वैचित्र्य, काव्य-भंगिमा को तथा उसकी व्यंजकता को स्पष्ट करता है। सरल, मनोहारी तथा रंग-वैभव से संपन्न बिंब योजना इनकी कलात्मकता की परिचायक बनती है। जगह-जगह प्रभावी एवं सटीक प्रतीक विधान की सृष्टि भी की गई है। ये प्रतीक परंपरागत भी हैं नव्यतम भी। इनमें हाथी, कमल, चंद्रमा, भ्रमर, दुर्योधन, बिदुर तथा करील आदि प्रतीक देखे जा सकते हैं।

कुल मिलाकर कह सकते हैं कि रीतिमुक्त अथवा रीतिस्वच्छंद शृंगार काव्यधारा के इन भावप्रवण कवियों ने अपने काव्य को पूरी ईमानदारी से, हृदयगत तल्लीनता एवं भावगत सच्चाई से प्रभावी बनाया है। भाव तथा कला की दृष्टि से यह काव्यधारा पूरी तरह से एक विशिष्ट काव्यधारा बनकर उभरती है। स्वानुभूति की तीव्रता, प्रेम की अभिव्यक्ति, विरह का आधिक्य, भाषा का विचित्र सौष्ठव, शब्दों का अर्थगत सौंदर्य, लाक्षणिक प्रयोग, सहज एवं मार्मिक बिंबयोजना सभी मिलकर इस काव्यधारा को वैशिष्ट्य प्रदान करते हैं।

बोध प्रश्न

3) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग दस पंक्तियों में दीजिए-

(i) रीतिमुक्त शृंगार काव्यधारा के प्रवर्तक घनानंद की काव्यगत विशेषताएँ क्या थीं?

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

ii) रीतिमुक्त काव्यधारा के अभिव्यंजना शिल्प की क्या विशेषता है?

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

4) निम्नलिखित कवियों पर लगभग सात-आठ पंक्तियाँ लिखिए-

i) आलम

....

....

....

....

....

....

....

....

ii) बोधा

....

....

....

....

....

....

....

....

iii) ठाकुर कवि

....

....

....

....

....

....

....

....

iv) द्विजदेव

....

....

....

....

....

....

....

....

4) निम्नलिखित विषयों पर पाँच-पाँच पंक्तियाँ लिखिए-

i) रीतिस्वच्छंद काव्यधारा में प्रेमानुभूति।

....

....

....

....

....

ii) भावप्रवणता और रीतिस्वच्छंद काव्यधारा।

....

....

....

....

....

iii) रीतिमुक्त काव्यधारा में विरह की अभिव्यक्ति।

....

....

....

....

....

....

13.5 रीतिकालीन काव्य की अन्य प्रमुख प्रवृत्तियाँ

रीतिकाल की तीन प्रमुख काव्यधाराओं में अभी तक हम रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध तथा रीतिमुक्त (शृंगार प्रधान) कवियों के विषय में, उनके काव्य की विशेषताओं के संदर्भ में तथा उनके अभिव्यंजना-पक्ष के बारे में गहन विवेचन कर चुके हैं। रीतिकाल के इन दो सौ वर्षों का साहित्य इन तीन प्रमुख प्रवृत्तियों से इतर भी पर्याप्त मात्रा में लिखा गया। राजाओं की विलासिता, आश्रयदाताओं की रंगीन-दुनिया तथा सुरा-सुराही के परिवेश से दूर या बाहर की सच्ची-सीधी दुनिया भी इस युग में विद्यमान थी। दरबार, खुशामदी या निजी प्रेम के मोह-पाशों से विच्छिन्न धार्मिक वृत्ति वाले भक्त कवि भी इस युग में भक्ति कर रहे थे तो वीरता के जौहर बखान करने वाले वीर भी इस युग का अंग बने हुए थे। भक्त कवियों में कृष्णभक्त, रामभक्त, संतकवि तथा सूफ़ी कवियों की पूरी परंपरा को देखा जा सकता है। भक्तिकालीन काव्य परंपराओं को विस्तार देने वाली ये काव्य परंपराएँ रीतिकाल में भी अत्यंत गौण रूप में प्रवाहित होती रहीं। निम्बार्क, चैतन्य, वल्लभ, राधा-वल्लभ और सखी-संप्रदाय आदि भक्तिकालीन परंपराएँ इस युग में भी विद्यमान रहीं किंतु ये मुख्य स्वर न बन सकीं। इसी प्रकार नीति काव्य परंपरा, चरित अथवा प्रशस्ति काव्य परम्परा और प्रकृति आदि को विषय बनाने वाले काव्य-सृजन भी इस युग में होते रहे। ये सभी रीतिकालीन रीतिमुक्त कविता की शृंगारेतर अथवा अन्य प्रमुख प्रवृत्तियाँ ही हैं जिन्हें मुख्य प्रवृत्तियों के साथ-साथ प्रवाहित होते देखा जा सकता है। यहाँ हम इन्हीं प्रमुख शृंगारेतर अथवा अन्य प्रवृत्तियों की संक्षिप्त चर्चा करेंगे।

13.5.1 भक्तिकाव्य

रीतिकालीन भक्तिकाव्य के अंतर्गत पर्याप्त विविधता के दर्शन किए जा सकते हैं। भक्तिकाल में भक्ति की जो चार काव्यधाराएँ प्रवाहित थीं उनका विस्तार ही रीतिकाल में देखने को मिलता है किंतु यह विस्तार रीतिकाल तक आते-आते अत्यंत गौण प्रवृत्ति के रूप में परिवर्तित होता जान पड़ता है। कृष्णभक्ति, रामभक्ति तथा निर्गुण के अंतर्गत संत काव्यधारा एवं सूफ़ी काव्यधारा की परंपरा का निर्वाह इस युग के भक्ति साहित्य में भी हुआ। यहाँ इन्हीं की संक्षिप्त चर्चा हम करेंगे।

कृष्णभक्ति काव्य

श्री कृष्ण की बाल और किशोर लीलाओं पर तो अधिकांश रीतिकालीन भक्त कवि मुग्ध रहे ही हैं। यों भी कृष्ण-कथा इस युग के काव्य का प्रेरक-कारण बनती है। वैष्णवधर्म की दृष्टि से देखें तो इस युग के कृष्णभक्ति काव्य का केंद्र वृंदावन बना तथा रामभक्ति काव्य

का केंद्र अयोध्या बना। इन दोनों प्रकार के काव्य में माधुर्य-भाव की भक्ति का ही प्राधान्य रहा।

इस युग के कृष्णभक्त कवियों ने प्रबंधात्मक कृतियाँ भी लिखीं तथा मुक्तक काव्य रचना भी की। प्रबंधात्मक कृष्णभक्ति काव्य के रचयिताओं में गुमान मिश्र, ब्रजवासीदास, मंचितकवि, तथा घनानन्द आदि का नाम लिया जा सकता है। ऐसी कृतियों में गुमान मिश्र कृत 'कृष्णचंद्रिका' ब्रजवासीदास कृत 'ब्रजविलास' तथा मंचितकवि की 'सुरभीदान लील' और 'कृष्णायन' आदि की चर्चा की जा सकती है। कृष्ण भक्ति काव्य का मुक्तकों में सृजन करने वाले कवियों में रूपरसिकदेव, नागरीदास, अलबेली अलि, चाचा हितवृंदावनदास तथा भगवत रसिक आदि उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त वृंदावनदेव, पीतांबरदास, सुंदरी कुंवरिबाई प्रेमसखी, कृष्णदास, रत्नकुँवरि तथा भोला भंडारी आदि अन्य कवियों का भी कृष्णभक्त काव्यधारा के विकास में पर्याप्त योगदान रहा।

उत्तर मध्ययुग अर्थात् रीतिकालीन कृष्णभक्ति काव्य पर राधा बल्लभ संप्रदाय एवं सखी संप्रदाय की साधना-पद्धतियों का प्रभाव अत्यंत व्यापक रहा। राधा-कृष्ण की श्रृंगारिक-लीलाओं के माध्यम से इस युग के कृष्णभक्त कवियों ने युग-प्रचलित त्योहारों एवं समारोहों का वर्णन भी पूरे मनोयोग से किया। राधा-कृष्ण के ग्रामीण गोप रूप के स्थान पर उनके श्रृंगार-प्रधान रूप उभर आए। माखन-लीला, गोदोहन, गोचारण, चीर-हरण तथा मथुरा-गमन आदि के स्थान पर अब राधा-कृष्ण का राजसी ऐश्वर्य से परिपूर्ण स्वरूप ही काव्य में उभरने लगा था। उनकी वेश-भूषा और आभूषणों के वर्णन अधिक होने लगे थे। भक्त कवियों ने अपने को राधा-कृष्ण के सखी रूप में स्थापित करते हुए सखी भाव की भक्ति पर बल दिया।

राधा-कृष्ण के सौंदर्य का विस्तृत वर्णन, राधा के महत्व की स्थापना, राधा-कृष्ण के नित्य-विहार, कृष्ण-राधा की युगल उपासना के समय भक्त की दास्य भाव की भक्ति, कृष्ण का स्वयं राधा को वस्त्राभूषणों से सुसज्जित करना, राधा का पीतांबर एवं मुरली धारण कर कृष्ण बनना, राधा-कृष्ण के अष्टयाम एवं छद्म-लीला वर्णन आदि विषय इस युग के कृष्णभक्ति साहित्य में अपनाए गए। इस कृष्णभक्ति काव्य की भाषा ब्रजभाषा ही रही पर वह और अधिक परिनिष्ठित एवं परिष्कृत रूप से सामने आई। विषयानुकूल कोमलकांत मधुर पदावली का प्रयोग किया गया। मुगल दरबारों की राजसी भाषा फ़ारसी तथा अरबी के शब्दों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया गया। विभिन्न राग-रागिनियों का प्रयोग भी सहज ही देखा जा सकता है। चौपाई, दोहा, कवित्त, सवैया, कुंडलिया तथा अरिल्ल आदि छंदों का प्रयोग इनके काव्यों में हुआ है। इस काव्यधारा के अन्य प्रमुख कवियों में-श्री हरिराम, बल्लभ रसिक, गोस्वामी रूपलाल, श्री रसिकदास, ब्रजवासी दास, श्री हठी जी, अलबेली अलि, श्री चंद्रलाल गोस्वामी, रूपसखी, रसिक गोविंद तथा भगवत रसिक आदि उल्लेखनीय हैं।

रामभक्ति काव्य

रामभक्त कवि भी कृष्णभक्तों की तरह सखी-संप्रदाय का अनुकरण करते हुए राम का रसिक रूप में वर्णन करते रहे, पर उन्हें बहुत अधिक प्रसिद्धि नहीं मिल सकी। लोक प्रसिद्ध राम का मर्यादावादी रूप जब सखी रूप में ढाला गया तो उसे पूरे मन से स्वीकृति न मिल सकी। कुछ रामभक्त कवि भक्तिकालीन परंपरा का निर्वाह करते हुए राम के मर्यादित रूप की भी वंदना कर रहे थे, परंतु तुलसी की रामभक्ति परंपरा तो तुलसी के देहावसान के बाद अवरुद्ध सी हो गई थी।

रामपरक माधुर्य भाव को साधना में सर्वप्रथम स्थान आलवार भक्तों द्वारा प्राप्त हुआ। इनकी रचनाओं में वात्सल्य और दास्य भक्ति की भावना का मिश्रित रूप उपलब्ध होता है। स्वामी रामानन्द जी की शिष्य परंपरा के स्वामी अग्रदास जी ने राम की रसिक साधना को व्यवस्थित रूप दिया। इनकी कृति 'ध्यान-मंजरी' इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। उनका मानना है-

यह दंपति वर ध्यान रसिक जन नित प्रति ध्यावें।
रसिक बिना यह ध्यान और सपनेहुँ नहिं पावैं।।

यों भक्तिकाल में भी रामभक्ति की रसिक कवि-परंपरा मिलती है जिनमें 'भक्तमाल' के रचयिता नाभादास, भानदास, मुरारीदास, प्रयागदास और मुक्तामणिदास आदि के नाम देखे जा सकते हैं। यह परंपरा रीतिकाल में भी विकसित हुई और इसके अंतर्गत बाल कृष्ण 'बाल अलि', अनन्य शीलमणि, जानकीरसिक शरण, छत्रसाल, प्रेमसखी, रामसखे, गुरुगोविन्द सिंह, सूर किशोर, विश्वनाथ सिंह, कृपा निवास, रामचरणदास, उमापति त्रिपाठी, नवलसिंह तथा रामशरण आदि कवियों का साहित्य उपलब्ध होता है। इस परंपरा का विकास आधुनिक काल तक भी देखा जा सकता है।

रामभक्ति परंपरा के ये कवि उपास्य के साथ व्यक्तिगत संबंध स्थापित कर उपासना करते थे। राम-सीता उनके पिता, पुत्र, माता, भाई, सखा, सखी एवं उपास्य बनकर सामने आते हैं। ये संत कवि सीता जी को परब्रह्म रामचंद्र की पराशक्ति मानते थे। इनके राम नित्य किशोर वय अपनी प्रियतमा सीता और नित्य मुक्त पार्षदों के साथ साकेत में विहार करते थे। संसार के संचालन हेतु इनके राम-ब्रह्मा, विष्णु, महेश के भी निर्माता बनते हैं। भक्तों को स्वेच्छा से मुक्ति प्रदान करने वाले परब्रह्म राम अयोध्या में अवतार लेते हैं। परब्रहम राम ही अयोध्या के अवतार काल में दुष्टों का नाश करके धर्म की स्थापना करते हैं। इसीलिए वे मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। रसिक संप्रदाय के भक्त परब्रह्म की इन्हीं लीलाओं का ध्यान करते हैं।

रसिक संप्रदाय के संत-भक्त पुष्टि मार्ग की भाँति भगवान के अनुग्रह पर अपार विश्वास रखते हैं। सीता-राम नाम का जप तथा आराध्य युग्म के रूप और गुण का ध्यान करते हुए ये भक्त मधुर, सख्य, वात्सल्य, दास्य एवं शांत भाव के संबंध स्थापित करते हैं। इसी प्रकार लीला-प्रवेश तथा लीला सुखभोग करते हुए ये सीता-राम के मधुर चरित के वर्णन एवं कीर्तन में ही व्यस्त रहते हैं। इस संप्रदाय का अधिकांश साहित्य मुक्तक शैली में है। कहीं-कहीं लीलाओं का क्रमबद्ध वर्णन अवश्य मिलता है। यों चौपाई-दोहा शैली तथा कवित्त, सवैया, कुंडलिया और बरवै आदि शैलियों का प्रयोग भी इस साहित्य में मिलता है। संगीत सेवा को भी इन्होंने पर्याप्त महत्व प्रदान किया। परिणामतः गेय-शैली में भी साहित्य-सृजन किया गया। लोक-गीतों के आधार पर भी रामकाव्य लिखा गया। इसमें श्रृंगार एवं वीर रस की प्रधानता रही। कहीं-कहीं भयानक, रौद्र तथा वीभत्स रस का भी अच्छा परिपाक है। भाषा की दृष्टि से अवधी और ब्रज का प्रयोग अधिकांशतः किया गया। जानकीरसिक शरण विरचित रामभक्ति काव्य का एक उदाहरण प्रस्तुत है-

रथ पर राजत रघुवर राम।
क्रीट मृकुट सिर धनुष बान कर सोभा कोटिन काम।
स्याम गात केसरिया बानो सिर पर भौर ललाम।
बैजन्ती बनमाल लसै उर कटिक मध्य अभिराम।।
मुख मयंक सरसी रूह लोचन हैं सबके सुखधाम।
कुटिल अलक अतरन में भीनी दुहुँ दिस छूटी स्याम।।

कबु कंठ मोतिन की माला किंकिन कटि दुति दाम।
रसमाला यह रूप रसिक बर करहु हिये अभिराम।।

निर्गुण संतों का भक्ति काव्य

रीतिकाल में संत भक्तों की भी एक सुदीर्घ परंपरा मिलती है। पूर्व-मध्यकाल अर्थात् भक्तिकाल में कबीर, नानक, दादू आदि संतों ने विभिन्न संप्रदायों की स्थापना की थी। रीतिकाल तक आते-आते इस परंपरा का भी विकास-विस्तार हुआ पर यहाँ तक आते-आते इस परंपरा में कई नए संप्रदाय भी जुड़ गए। प्रायः प्रत्येक प्रभावी संत ने उत्तर मध्यकाल में अपनी विचारधारा के प्रचार हेतु नया संप्रदाय स्थापित करने का प्रयास किया। धामी संप्रदाय, सतनामी संप्रदाय, दरियादासी संप्रदाय, चरणदासी संप्रदाय, बाबा लाली संप्रदाय, दरिया पंथ, परीब पंथ आदि पंथ अथवा संप्रदाय इसी तथ्य के प्रमाण हैं। परन्तु उल्लेखनीय है कि संप्रदायों की भिन्नता होने पर भी उनकी मौलिक चिंतन पद्धति में पर्याप्त समानता मिलती है।

इसी युग की भक्ति परंपरा के प्रमुख संतों में सुंदरदास, भगवानदास, राधोदास सेवादास, बाबा प्राणनाथ, अक्षर अनन्य, गुरु गोविंद सिंह, बूला साहब, भीखा साहब, पलटू साहब, यारी साहब, चरणदास, दयाबाईट धरणीदास, दूलनदास, दरिया साहब, तुलसी साहब, गरीबदास तथा संत रामचरण आदि प्रमुख हैं।

इस युग के निर्गुण भक्त संतों की रचनाएँ तथा साधना पद्धतियाँ, समन्वय पर विशेष बल देती थीं। इन संतों ने हिंदू-मुस्लिम एवं ईसाई धर्मों की एकता पर जोर दिया। इन संतों की भक्ति पद्धति में कबीर जैसी अक्खड़ता का अभाव रहा। धर्म-संप्रदायों की त्रुटियों की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट करना, पंडित-मुल्लाओं की भर्त्सना करना, रामकृष्ण आदि अवतारों को सत्पुरुष के प्रतिनिधि के रूप में स्थापित करना तथा मूर्ति पूजा के प्रति अविश्वास रखना इन संतों-भक्तों की प्रमुख विशेषता थी। पौराणिकता का प्रभाव इन पर पर्याप्त मात्रा में देखा जा सकता है। इस युग के संत कवियों ने सबद तथा साखियों के साथ-साथ दोहा, चौपाई, कवित्त, सवैया, अरिल्ल एवं कुंडलिया आदि छंदों की शैली को भी अपनाया। इनके काव्य में रेख़्ता, ग़ज़ल एवं अन्य फारसी छंदों को भी अपनाया जाता रहा। इस परंपरा के संत कवि गुरु गोविंद सिंह तथा दरिया साहब के काव्य का एक-एक उदाहरण प्रस्तुत है-

निर्जन निरूप हौ, कि सुन्दर स्वरूप हौ,
कि भूषण के भूप हौ कि दानी महादान हौ?
प्रान के बचैया, दूध पूत के देवैया,
रोग सोग के मिटैया, किधों मानी महामान हौ?
विधा के विचार हौ, कि अद्वैत अवतार हौ,
कि सुद्धता की मूर्ति हौ कि सिद्धता की सान हौ?
जोबन के जाल हौ कि काल हू के गाल हौ,
कि सत्रुन के साल हौ कि मित्रन के प्रान हौ?

- गुरु गोविन्द सिंह

भीतर मैलि चहल के लागी, ऊपर तन का धोबै है।
अवगति सुरति महल के भीतर वाका पंथ न जोवै है।
जुगति बिना कोई भेद न पावै साधु संगति का गोवै है।।
कह दरिया कुटने बे गोदो सीस पटकि का रोबै है।।

- दरिया साहब

निर्गुण सूफ़ी संतों का भक्ति काव्य

भक्तिकालीन सूफ़ी प्रेमाख्यानक काव्यधारा का विकास भी रीतिकाल के अंत तक सहज ही देखा जा सकता है। भक्तिकाल में जिस परंपरा को जायसी, कुतुबन, मंझन, मुल्ला दाऊद तथा उस्मान आदि ने उत्कर्ष पर पहुँचाया, रीतिकाल में उसी काव्यधारा को नूर मुहम्मद, शेख निसार, कासिमशाह, हुसैन अली, बोधा, शाह नज़फ अली, नज़ीर अकबरबादी तथा वजहन आदि-सूफ़ी संतों ने विस्तार प्रदान कर जीवित रखा।

पूर्व मध्ययुग के सूफी संतों की रचनाओं में विषय एवं शैली का वैविध्य मिलता है। चौपाई-दोहा शैली का उसमें प्रयोग किया गया है। अवधी भाषा में ब्रज तथा खड़ी बोली का मिश्रण है। रीतिकालीन सूफ़ी कवियों के काव्य में युगीन परिस्थितियों के प्रभाव को सहज ही देखा जा सकता है। नख-शिख एवं संयोग-वियोग श्रृंगार का इन सूफ़ी संतों ने विस्तृत वर्णन किया है। नायिका भेद को ध्यान में रखते हुए इन्होंने नायिकाओं के विभिन्न रूप भी प्रस्तुत किए। 'अनुराग बाँसुरी' जैसे कुछ प्रेमाख्यानक ग्रंथों में तो नायिकाओं की परिभाषाएँ भी दी गई हैं। कुछ कृतियों में सूफ़ी परंपरा का आध्यात्मिक स्पर्श भी है। इन सूफ़ी कवियों ने भक्तिकालीन सूफी परंपरा के अनुसार ही बारहमासा तथा षट्ऋतु वर्णन आदि को भी विषय बनाया है। इनमें राम-रहीम की एकता तथा संसार की नश्वरता आदि विषयों को भी विस्तार से प्रतिपादित किया गया है। धार्मिक उदारता, हिंदू त्योहारों, रीति-रिवाजों और देवी-देवताओं के प्रति आस्था, भारतीय एवं अभारतीयता के मिश्रण आदि पर विशेष बल दिया गया। नज़ीर अकबरबादी तो कृष्ण-लीलाओं का वर्णन भी पूरे मनोयोग से करते हैं।

इस युग के अधिकांश सूफ़ी कवियों ने अवधी भाषा को ही अपनाया पर युगीन भाषा ब्रजभाषा थी अतः उसका भी पर्याप्त प्रभाव देखने को मिलता है। जान और हुसैन अली की भाषा पर ब्रजभाषा का प्रभाव अत्यधिक मिलता है। इन सूफ़ी कवियों ने प्रबंधकाव्यों में चौपाई-दोहा, चौपाई-सोरठा और चौपाई बरवै शैली का प्रयोग किया है तथा मुक्तक काव्य में दोहा, साखी, सबद एवं झूलना आदि शैलियों का प्रयोग किया है। इनकी अवधी भाषा सरल, सहज और प्रवाह युक्त रही है। शेख निसार के काव्य का एक उदाहरण प्रस्तुत है-

दिन भर मौन गहे रहै, भूख प्यास गई भूल।
पान खाइ न रस पियै, काँट भये सब फूल।।
भूषण रतन उतारि जो डारा। दुखदायक भई सभै सिंगारा।।
मन महँ सोच करै मुरझाई। लैगा प्रान सरूप देखाई।।
नाउँ ठाउँ कछू जानौ नाहीं। कहाँ सो खोज करौं जग माहीं।।

अतः स्पष्ट है कि रीतिकाल में रीतिपरंपरा से भिन्न रीतिमुक्त काव्यधारा की श्रृंगारेतर काव्यधाराएँ भी अत्यंत व्यापक रूप में विद्यमान थीं। इनमें भक्ति की काव्यधारा प्रमुख थी। भक्ति की ये कृष्ण-राम एवं संत सूफ़ी काव्य धाराएँ भक्तिकालीन भक्ति साहित्य की धाराओं के समकक्ष गरिमामंडित तथा उदात्त भले ही न थीं परंतु फिर भी ये युगीन आस्थाओं तथा सामाजिक-परिवेश के प्रभाव को दर्शाने वाली काव्यधारा के रूप में अवश्य विद्यमान रहीं।

13.5.2 नीतिकाव्य

रीतिकालीन श्रृंगारेतर रीतिमुक्त काव्य के अंतर्गत नीतिकाव्य-सृजन की एक प्रवृत्ति भी विद्यमान रही है। भक्तिकालीन साहित्य में नीति अधिकांशतः भक्ति का ही अंग बनकर उभरी, किंतु रीतिकाल में जीवन-मूल्यों के ह्रास तथा नैतिक मर्यादाओं के विघटन से नीति

पृथक हो गई। धर्म और भक्ति, जो कि भक्तिकाल में अभिन्न बने हुए थे, इस युग में आकर भिन्न से हो गए। परिणामतः नीति का आध्यात्मिक स्पर्श भी विच्छिन्न हो गया।

यों नीतिकाव्य की सुदीर्घ परंपरा संस्कृत काव्य में देखी जाती है। संस्कृत के भर्तृहरि (नीतिशतक) और हेमचंद्र से होती हुई, भक्तिकाल के कबीर, तुलसी, रहीम या जमाल आदि के काव्य में मिलने वाली नीति-विषयक दोहा छंदों की यह परंपरा रीतिकाल तक भी पहुँची। रीतिकालीन नीतिविषयक काव्य सृजकों में वृंद, गिरिधिर कविराय, बैताल, सम्मन, राम सहायदास, दीनदयाल गिरि, घाघ तथा गुरुदत्त शुक्ल आदि प्रमुख माने जाते हैं।

रीतिकाल का नीतिकाव्य आध्यात्मिकता से निरपेक्ष रहकर युग के व्यक्ति की भौतिक एवं मानसिक समस्याओं के समाधान हेतु तरह-तरह के उपदेश देता है। इस प्रकार की नीतिपरक उक्तियाँ या छंद रीतिकाल के अन्य रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध या रीतिमुक्त कवियों के काव्य में भी जगह-जगह उपलब्ध हैं। सभी नीति रचनाएँ मुक्तकों में प्रस्तुत हैं। कतिपय ग्रंथ केवल नीति विषयक भी लिखे गए।

रीतिकाल के अधिकांश कवियों का दरबारों से संबंध था और इसलिए वे मानव-स्वभाव तथा उसकी मनोवृत्तियों के साथ-साथ उसके व्यवहार को भी उचित-अनुचित की दृष्टि से भली-प्रकार आँक सकते थे। यही कारण है कि भूपति, भिखारीदास, सुखदेव, बिहारी, मतिराम तथा विक्रम आदि कवियों के साहित्य में नीतिकथन पर्याप्त मात्रा में मिल जाते हैं।

वृंद ने तो पूरी 'सतसई' (वृंद सतसई) ही नीति विषयक लिख डाली जिसमें सात सौ दोहे अत्यंत सहज, सरल, सरस एवं कलात्मक ब्रजभाषा में प्रस्तुत किए गए हैं। अनेक दोहे लोकप्रिय, सटीक, उपयुक्त एवं लोकजीवन के जीवंत प्रतिबिंब को उकेरने में सफल होते हैं। यथा-

फीकी पै नीकी लगै, कहिए समय बिचारि।
सबको मन हरषित करै, ज्यौं विवाह में गारि।।
भले बुरे सब एक सम, जौ लौं बोलत नाहिं।
जान परत हैं काग पिक, ऋतु बसन्त के माहिं।।

इसी प्रकार गिरिधिर कविराय की नीति-विषयक कुण्डलियाँ तो अत्यंत प्रसिद्ध हुईं। गिरिधिर कविराय ने समाज, जाति, गाँव, परिवार, दरबार तथा घर-बार आदि में अपनाई जाने वाली नीति एवं मानव व्यवहार पर अत्यंत सरल भाषा में तथ्यात्मक वर्णन प्रस्तुत किए हैं -

सांई सब संसार में, मतलब का व्यवहार।
जब लगि पैसा गाँठ में, तब लगि ताको चार।।
तब लगि ताको चार चार सुँग ही सुँग डोलै।।
पैसा रहा न पास यार मुख सौ नहिं बोलै।
कह गिरिधिर कविराय जगत यहि लेखा भाई।
बिनु बेगरजी प्रीत चार बिरला कोई साई।।

इसी प्रकार बैताल, दीनदयाल गिरि तथा घाघ आदि कवियों की नीति विषयक उक्तियाँ भी अत्यंत सारगर्भित तथा मार्मिक बन पड़ी हैं। उनमें अनुभव दूरदृष्टि तथा दिलचस्प घटनाओं का भंडार छिपा है। वृंद का यह दोहा कितना प्रामाणिक एवं जीवंत है-

सबै सहायक सबल के, कोउ न निबल सहाय।
पवन जगावत अगिनि को, दीपहिं देत बुझाय।।

अतः स्पष्ट है कि रीतिकाल की अन्य प्रवृत्तियों में नीति काव्य सृजन की यह प्रवृत्ति भी अत्यंत महत्वपूर्ण रही। लोकदृष्टि, धर्मशास्त्र का ज्ञान, नैतिक दृष्टि तथा जीवन चिंतन का बहुमूल्य भंडार इस साहित्य में भरा है। व्यंग्य, हास्य, तीखी चोट-सब कुछ तत्सम, तद्‌भव देशज और अरबी-फारसी के शब्दों में ढलकर ब्रजभाषा का मार्मिक स्वरूप प्रस्तुत करते हैं। मुहावरे और लोकोक्तियों का धारदार प्रयोग इन्हें भव्य सौंदर्य प्रदान करता है।

13.5.3 वीरकाव्य एवं प्रशस्तिकाव्य

रीतिकालीन वीरकाव्य की प्रवृत्ति प्रबंध और मुक्तक दोनों ही रूपों में मिलती है। परंतु मुक्तकों में मिलने वाला वीरकाव्य मात्रा में कहीं अधिक एवं उत्कृष्ट है। प्रबंध काव्य अपेक्षाकृत कम है। राजाओं-आश्रयदाताओं की अतिरंजित प्रशस्ति तथा उनकी कीर्ति-गाथाओं के अति विस्तृत वर्णन इस युग में कोई अविश्वसनीय बात नहीं। परंतु इस युग के वीर काव्य का सराहनीय पक्ष है, उसमें मिलने वाली देश-भक्ति की जीवंत एवं ईमानदार भावना। रीतिकाल दरबारी एवं श्रृंगारी युग था, यह सत्य है। परंतु ऐसे युग में देश भक्ति, वीर-प्रशस्ति एवं देश पुत्रों की कीर्ति का विस्तृत बखान जनता की प्रेरणा बन कर उभरता है। इस युग के प्रबंध वीरकाव्य सृजकों में लाल, पद्‌माकर, सूदन, खुमान तथा जोधराज प्रमुख हैं तो मुक्तक वीर काव्यों की रचना करने वालों में भूषण तथा बाँकी दास उल्लेखनीय हैं।

इसमें संदेह नहीं कि रीतिकालीन वीरकाव्य वर्णन आदिकालीन वीरकाव्य वर्णन की तुलना में कम गुणवान है। आदिकालीन प्रशस्ति एवं कीर्ति गुणगान की प्रस्तुति श्रृंगारमुक्त होकर भी विश्वसनीय सी जान पड़ती है पर रीतिकाल की प्रशस्ति में यह स्फूर्ति एवं ताजगी उपलब्ध नहीं होती। रीतिकालीन दरबारी कवियों में भूषण सरीखे दो-एक कवियों को छोड़कर कोई ऐसा नहीं जो राजाओं या योद्धाओं के साथ रण क्षेत्र में उतरकर वहाँ के वास्तविक युद्ध कौशल का प्रामाणिक बखान करता हो। ये अधिकांश कवि तो राजाओं की स्तुति-प्रशस्ति में अतिशयोक्ति की सीमाएँ भी लाँघ गए हैं। वास्तव में इनका ध्येय तो राजाओं की मुँहदेखी प्रशंसा कर धन सँजोने का रहा है। इन्होंने युद्ध प्रसंगों, सिपाहियों, घोड़े एवं अन्य युद्ध उपकरणों का खूब बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन किया। आश्रयदाताओं की युद्धवीरता, दानवीरता, धर्मवीरता एवं दयावीरता के बखान करके इन कवियों ने अपनी जीविका के साधन पक्के किए।

भिखारीदास के 'काव्य निर्णय', सुखदेव के 'छंद विचार' तथा बेनी कवि के 'नवरस तरंग' आदि ग्रंथों में प्रशस्ति के अनेक उदाहरण देखे जा सकते हैं। इन कवियों की शैली तो रीति ग्रंथों की ही रही परंतु उद्‌देश्य प्रशस्ति ही रहा। भूषण का 'शिवराज भूषण',रतन कवि का 'फतेहसिंह प्रकाश' तथा गंजन कवि का 'कमरुद्‌दीन खाँ हुलास' आदि ग्रंथ इसी परंपरा में आते हैं। भूषण का ही 'शिवाबावनी', लालकवि का 'छत्रसाल प्रकाश', जोधराज का 'हम्मीर रासो', सूदन का 'सुजान-चरित', चंद्रशेखर वाजपेयी का 'हम्मीरहठँ' तथा सूर्यमल्ल का 'वंश भास्कर' आदि ग्रंथ भी इसी परंपरा के उल्लेखनीय ग्रंथ हैं। पद्‌माकर का 'हिम्मतबहादुर विरुदावली', गवाल का 'हम्मीरहठ' और 'विजय विनोद' आदि ग्रंथ भी इस दृष्टि से महत्वपूर्ण माने जाते हैं। इन वीरकाव्यों की भाषा ब्रज ही रही है पर उसमें स्थान-स्थान पर खड़ी बोली, मारवाड़ी, पूर्वी, पंजाबी, राजस्थानी, आदि भाषाओं बोलियों के शब्दों का मिश्रण रहा है। कवित्त और सवैयों का इन कवियों ने अत्यंत

प्रशंसनीय उपयोग किया है। भूषण तो शिवाजी के दरबारी कवि थे और उनकी वीररस की कविता में तो प्राण बसे हैं। सोये हुए समाज को उद्‌बुद्ध करने की जो ताकत उनकी कविता में मिलती है वह अन्यत्र नहीं है। शिवाजी के पराक्रम और उनकी सेना के शौर्य गान को तो भूषण ने पूरे मनोयोग से काव्यबद्ध किया है-

भूषण भनत तेरी हिम्मत कहाँ लौ कहौं,
किम्मति यहाँ लगि है जाकी भट जोट मैं।
ताव दै दै मूछन कँगूरन पै पाँव दै दै,
अरि-मुख घाव दै दै कूदि परैं कोट मैं।।

इसी प्रकार कवि के काव्य का एक और उदाहरण भी देखा जा सकता है -

तोम-तम छाए सुलतान दल आए सोतौ,
समर भजाए उन्हें छाई है अर्क सी।
काल कैसी रसना कराल करवाल तेरी,
व्याल भाल काटि कै करन लागी तकसी।
सूदन सुजान मरदान हरिनारायन,
देव हरि देव जगजीत ताहिं बकसी।
जूझत हकीम खाँ अमीरन के धकसी,
औ बकसी के जिम मैं परी है धकपक सी।।

13.5.4 अन्य स्फुट काव्य प्रवृत्तियाँ

उत्तर मध्ययुग अर्थात् रीतिकाल में भक्तिकाव्य, नीति, प्रशस्ति तथा वीरकाव्य के अतिरिक्त अन्य भी कई स्फुट काव्य प्रवृत्तियों को देखा जा सकता है। उस युग में पौराणिक काव्यों की रचना भी पर्याप्त मात्रा में हुई। ऐसे काव्य पौराणिक कथाओं के आधार पर लिखे गए। कवियों ने अपनी रुचि के अनुसार कथा-प्रसंगों को घटाया-बढ़ाया अथवा कल्पना का प्रयोग कर उसे नव्य रूप प्रदान किया। रामायण, महाभारत, हरिवंशपुराण, श्रीमद्भागवत आदि पौराणिक एवं ऐतिहासिक ग्रंथों से विविध कथाएँ-घटनाएँ चुन कर आधार बनाई गईं। इसी प्रकार नृसिंहावतार, दत्तात्रेय, वामन, मनु, नल-दमयंती, शंकर, पार्वती, गणेश तथा हनुमान आदि की कथाओं के वर्णन भी जगह-जगह किए गए। इस तरह के कवियों में बारहट नरहरिदास, सबलसिंह चौहान, भीष्म कवि, भूपति, कुंवर मेदिनी मल्ल, भगवंत राय खींची, मंचित, मनियार सिंह, कलानिधि, मधुसूदनदास, सोमनाथ, ललकदास, खुमान, नाथूराम चौबे, गिरिधरदास तथा जानकी प्रसाद आदि कवियों के नाम उल्लेखनीय हैं। इनके अधिकांश ग्रंथ प्रबंधात्मक ही हैं और एक-दो को छोड़कर लगभग सभी की भाषा ब्रजभाषा ही है। चौपाई-दोहा शैली के साथ इनमें कवित्त, सवैया, सोरठा तथा घनाक्षरी आदि छंदों का प्रयोग भी किया गया है।

रीतिकाल में बहुत से ज्योतिष, वैधक, चिकित्सा, युद्ध नीति एवं ज्ञान विषयक काव्य-रचनाएँ भी उपलब्ध होती हैं। प्रवृत्ति संबंधी वर्णन भी काव्य-वृत्तियों में पर्याप्त मात्रा में किया गया है। संस्कृत से ब्रजभाषा में कई कृतियों के अनुवाद भी किए गए हैं। आचार्य सोमनाथ का नाम इस तरह के कार्यों में अग्रगण्य है। इसी प्रकार गोपाल राम कृत 'खूब तमाशा', गोस्वामी जतनलाल कृत 'अनन्य सार', जयगोपाल कृत 'तुलसी शब्दार्थ प्रकाश' तथा गोपाल राम कृत 'दंपति वाक्य विलास' आदि ज्ञान संबंधी विवरण देने वाली कृतियों का भी अपना ही विशिष्ट महत्व है। इसी तरह हास्य-व्यंग्य लिखने वाले कवियों में अली मुहिब खाँ तथा बेनी बंदीजन आदि के नाम भी गिनवाए जा सकते हैं।

अतः कह सकते हैं कि रीतिकाल में रीतिमुक्त काव्यधारा की शृंगारेतर काव्य प्रवृत्तियों में भी पर्याप्त विकास-विस्तार के दर्शन होते हैं। भले ही इनकी आधार भूमि भक्तिकाल में सुदृढ़ हुई हो परंतु इन काव्यधाराओं को जीवित बनाए रखने और उन्हें पोषित किए जाने का महत्वपूर्ण कार्य रीतिकाल के इन कवियों ने किया है। अभिव्यंजना कला और उत्कृष्ट प्रतिभा से संपन्न इन कवियों का भाषा-संस्कार इन्हें विशिष्ट बनाता है तो युगीन आवेग एवं प्रवाहमयी काव्यधाराओं के विरुद्ध अथवा उनसे पृथक अपनी खास पहचान बनाने का गुण इन्हें दुर्लभ महत्व का अधिकारी निर्धारित करता है। ब्रजभाषा को जो प्रौढ़ता इन कवियों ने प्रदान की वह इससे पूर्व संभव न हो सकी थी। यों रीतिकाल में अवधी भाषा में भी काफी साहित्य-सृजन हुआ परंतु ब्रजभाषा को जो उत्कर्ष मिल सका वह अन्य किसी को नहीं। इसलिए भक्तिकालीन काव्य को भावलोक की कविता और रीतिकालीन काव्य को मनोहारी कलालोक की कविता भी कहें तो गलत न होगा। यों रीतिकाल में ही ब्रजभाषा-गद्य तथा खड़ी बोली गद्य के भी पर्याप्त प्रयोग देखने को मिलते हैं। कुल मिलाकर कह सकते हैं कि रीतिकाल की साहित्यिक चेतना अत्यंत प्रबुद्ध, वैविध्यमयी एवं जीवंत थी। साहित्य एवं भाषा के परिष्कार, विस्तार और संवर्द्धन का यह युग एक विशेष युग ही था।

बोध प्रश्न

6) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग आठ-दस पंक्तियों में दीजिए-

i) रीतिकालीन कृष्णभक्ति काव्य का स्वरूप क्या था?

....

....

....

....

....

....

....

....

....

ii) रीतिकालीन रामभक्ति काव्य का विवेचन कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

7) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर पाँच-पाँच पंक्तियों में दीजिए-

i) रीतिकालीन नीतिकाव्य का स्वरूप क्या था?

....

....

....

....

....

ii) रीतिकालीन निर्गुण सूफी संतों का भक्ति काव्य कैसा था?

....

....

....

....

....

iii) रीतिकालीन वीर एवं प्रशस्तिकाव्य का परिचय दीजिए।

....

....

....

....

....

iv) रीतिकाल में अन्य स्फुट काव्य प्रवृत्तियाँ कौन-कौन सी थीं?

....

....

....

....

....

8) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दो-दो पंक्तियों में दीजिए-

i) रीतिकालीन कृष्णभक्ति काव्य लिखने वाले किन्हीं आठ कवियों के नाम लिखिए।

....

....

ii) रीतिकालीन निर्गुण संत कवियों में से किन्हीं आठ के नाम लिखिए।

....

....

iii) रीतिकाल के किन्हीं पाँच नीतिकारों के नाम लिखिए।

....

....

iv) रीतिकालीन वीर एवं प्रशस्तिकाव्यकारों में से किन्हीं छह के नाम लिखिए।

....

....

9) रीतकालीन वीरकाव्य एवं प्रशस्ति काव्य लिखने वाले कवियों में से किसी एक का काव्य-उदाहरण लिखिए।

....

....

....

....

....

....

10) रीतिकालीन नीति कवियों में से किसी एक का काव्य उदाहरण लिखिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

13.6 सारांश

संवत् 1700 से 1900 तक के 200 वर्षों का कालखंड हिंदी साहित्य के इतिहास में 'उत्तर मध्यकाल' अथवा 'रीतिकाल' नाम से जाना जाता है। इस काल की प्रमुख काव्यधाराओं में रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध के अलावा इस इकाई में आपने रीतिमुक्त काव्य की

मुख्य प्रवृत्तियों, विशेषताओं और उनके कवियों के ग्रंथों के संदर्भ में विस्तृत एवं गहन जानकारी हासिल की। इनके अतिरिक्त रीतिकाल की अन्य प्रमुख प्रवृत्तियों का भी सविस्तार विवेचन इस ईकाई में किया गया।

इसमें संदेह नहीं कि रीतिकाल के कवि, आचार्य भी थे। उनके काव्यशास्त्रीय पक्ष को देखें तो यही लगता है कि उन्होंने नवीन सिद्धांतों की उद्भावनाएँ तो नहीं की पर प्राचीन सिद्धांतों का पुनराख्यान पूरे मनोयोग से किया है। उनके विवेचन में दोष बहुत हैं यह ठीक है, परंतु उनके गुणों को भी भुलाया नहीं जा सकता। संस्कृत की काव्यशास्त्रीय परंपरा को जीवित रखने और आधुनिक युग से जोड़ने का जो कार्य इन कवि-आचार्यों ने पूरी श्रद्धा से किया वह स्तुत्य प्रयास ही कहा जायेगा। वास्तव में इन कवियों की मौलिकता को विस्तार एवं विवरण-वैविध्य में ही खोजना चाहिए। रीति परंपरा के इन कवियों के विवेचन अस्पष्ट तथा अपूर्ण भी हैं। पर यह नहीं भूलना चाहिए। कि ये कवि शास्त्रकार न थे, केवल रीतिकार थे। ये तो संस्कृत काव्यशास्त्र के उन आचार्यों की परंपरा में आते हैं जो कवि-शिक्षक थे, यथा अप्पयदीक्षित, जयदेव तथा भानुदत्त आदि।

जहाँ तक रीतिकाव्य के महत्व का प्रश्न है, यही कहा जाना चाहिए कि घोर पराभव के युग में तथा समाज की अव्यवस्था तथा अशांति में भी जन-जन को सरसता से सींचने का जो कार्य इस काव्य ने किया, वह सराहनीय ही नहीं महत्वपूर्ण भी है। नैतिक मूल्यों के पतन और निराशा-हताशा के उस युग में भक्तिकालीन काव्य की उदात्तता की कल्पना न्यायोचित भी नहीं। रीतिकाव्य सहृदय समाज की रुचि को परिष्कृत भले ही न कर सका हो, परन्तु उसे जो कलात्मक संस्पर्श इसने प्रदान किया है वह अन्य किसी साहित्य ने नहीं। ब्रजभाषा के काव्य रूप का भी बहुमुखी विकास इसी युग में संभव हो सका। अतः अभिव्यंजना की साज-सज्जा, अलंकृति तथा छंद संगीत की दृष्टि से इसके वैभव की तुलना नहीं है। इनका यह सूक्ष्म सौंदर्यबोध रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध, रीतिमुक्त अथवा रीतिइतर अन्य सभी प्रवृत्तियों में भी देखा जा सकता है।

13.7 उपयोगी पुस्तकें

घनानन्द और स्वच्छंद काव्यधारा – मनोहर लाल गौड़, अलीगढ़, हि.वि. प्रकाशन।

हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास (सप्तम भाग) - संपादक डॉ. भगीरथ मिश्र, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।

हिंदी साहित्य का इतिहास - संपादक डॉ. नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

हिंदी साहित्य का उत्तरमध्यकाल-रीतिकाल - डॉ. महेन्द्र कुमार, आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली।

हिंदी काव्यशास्त्र की परंपरा - डॉ. शिवनाथ पाण्डेय, के.एल. पचौरी प्रकाशन, दिल्ली।

रीतिकालीन साहित्य का पुनर्मूल्यांकन - डॉ. राम कुमार वर्मा साहित्य भवन (प्रा.) लिमिटेड, इलाहाबाद।

हिंदी साहित्य का इतिहास - डॉ. जयनारायण वर्मा, के.एल. पचौरी प्रकाशन नई, दिल्ली।

रीतिकाव्य की भूमिका . डॉ. नगेन्द्र।

13.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1) देखिए भाग : 13.2

2) i) ×

   ii) ✓

   iii) ×

   iv) ✓

   v) ✓

3) i) देखिए भाग 13.3.1

   ii) देखिए भाग 13.4.6

4) i) देखिए भाग 13.3.2

   ii) देखिए भाग 13.3.4

   iii) देखिए भाग 13.3.3

   iv) देखिए भाग 13.3.5

5) i) देखिए भाग 13.4.2

   ii) देखिए भाग 13.4.4

   iii) देखिए भाग 13.4.3

6) i) देखिए भाग 13.5.1

   ii) देखिए भाग 13.5.1

7) i) देखिए भाग 13.5.2

   ii) देखिए भाग 13.5.1

   iii) देखिए भाग 13.5.3

   iv) देखिए भाग 13.5.4

8) i) देखिए भाग 13.5.1

   ii) देखिए भाग 13.5.1

   iii) देखिए भाग 13.5.2

   iv) देखिए भाग 13.5.3

9) i) देखिए भाग 13.5.3

10) ii) देखिए भाग 13.5.2